हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

हिन्दी कामाख्या तन्त्र

वर्ष ४८] माघ-फाल्गुन, २०४६ वि०—फरवरी-मार्च, १९९० [संख्या ११-१२

कामाख्ये काम - सम्पन्ने, कामेश्वरि ! हर - प्रिये !
कामनां देहि मे नित्यं, कामेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।।
कामदे काम - रूपस्थे, सुभगे सुर - सेविते !
करोमि दर्शनं देव्याः, सर्व - कामार्थ - सिद्धये ।।

अर्थात् हे कामाख्या देवि ! कामना पूर्ण करनेवाली, कामना की अधिष्ठात्री, शिव की प्रिये ! मुझे भी सदा कामनाएँ दो और मेरी कामनाओं को सिद्ध करो। हे कामना देनेवाली, कामना के रूप में ही स्थित रहनेवाली, सुन्दरी और देव-गणों से सेविता देवि ! सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए मैं आपके दर्शन करता हूँ।

इस अङ्क में

१ भगवती क्षेमङ्करी और महिषासुर १
२ चैत्र का नवरात्र ४
३ सप्तमी महा-विद्या ७
४ 'समता' का प्रतीक 'तन्त्र-शास्त्र' ८
५ हिन्दी कामाख्या तन्त्र १-४८

यह प्रति ८ रु०/वार्षिक मूल्य ४५ रु०

हिन्दी

प्राण-तोषिणी तन्त्र

(सर्ग-काण्ड, धर्म-काण्ड, अर्थ-काण्ड, काम्य-काण्ड एवं भक्ति-काण्ड)

'वृहत् तन्त्रसार' के अनुरूप दुर्लभ एवं अति उपयोगी ग्रन्थ ।

मूल्य ४५) रु.

हिन्दी

कुलार्णव-तन्त्र

तन्त्र-साहित्य में 'कुलार्णव तन्त्र' सबसे अधिक उद्धृत किया जानेवाला ग्रन्थ है । तन्त्र-प्रेमी बन्धुओं के लिए इसका संग्रह आवश्यक है ।

मूल्य १५) रु.

हिन्दी

महा-निर्वाण तन्त्र

तन्त्र-शास्त्रों में महा-निर्वाण तन्त्र श्रेष्ठ ग्रन्थों में से एक है । तन्त्र-विद्या के जिज्ञासुओं, विशेषतया भगवती काली के उपासकों के लिए इसका अध्ययन अनिवार्य है ।

मूल्य २०) रु०

श्री पद्म-महा-पुराणोक्त :

भगवती क्षेमंकरी और महिषासुर

• पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र, प्रयाग

श्री दुर्गा-सप्तशती स्तोत्र हिन्दू-समाज का एक बहुत ही सम्मानित, किन्तु एक छोटा-सा धर्म-ग्रन्थ है। श्रद्धालु जन प्रायः प्रति-दिन, विशेष रूप से नवरात्र में श्रद्धा-पूर्वक उसका पाठ करते हैं। उसके प्रारम्भिक अंश में श्री देवी जी के द्वारा महिषासुर नामक एक अत्यन्त ही दुर्दान्त पराक्रमी तथा समस्त देव-गण के विजेता दैत्य के वध की कथा वर्णित है।

श्री दुर्गा सप्तशती-स्तोत्र श्री मार्कण्डेय पुराण का एक छोटा-सा अंश है। श्री दुर्गा जी की ही एक दूसरी मूर्ति, अन्यत्र उन्हीं के एक-दूसरे नाम को धारण करनेवाली भगवती क्षेमङ्करी के द्वारा उक्त दैत्य-राज के वध का वृत्तान्त 'श्री पद्म-महा-पुराण' के सृष्टि-खण्ड के पैंतीसवें अध्याय में आया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है--

भगवती क्षेमङ्करी श्रीपुष्कर-क्षेत्र में जाकर वहाँ के एक पर्वत पर विराजमान हो गई थीं और तपस्या कर रही थीं। कुछ काल के पश्चात् एक दिन वे श्री देवी जी अकस्मात् क्रुद्ध हो उठी थीं और उनका वह क्रोध अत्यन्त ही प्रचण्ड हो उठा था। उस क्रोध के विकार के रूप में श्री देवी जी के मुख से सुन्दरी स्त्रियों का एक बहुत बड़ा दल निकल आया था। वे सभी सुन्दरियाँ भगवती श्री क्षेमङ्करी के ही समान अपार तेजस्विनी और रूपवती थीं, साथ ही उत्तम प्रकार के वस्त्रों तथा अलङ्कारों से सुसज्जित थीं। ये सब उन श्री देवी जी के समीप उनकी अनुचरियों के रूप में रहने लगी थीं।

भगवती ने उन सभी देवियों का नामकरण किया था, किन्तु इस छोटे-से लेख में उस विषय से सम्बन्धित वृत्तान्त का वर्णन अभीष्ट नहीं है। उन सबके सुख-पूर्वक वास करने के लिए श्री देवी जी ने तपस्या के प्रभाव से एक सुन्दर नगर की भी सृष्टि की थी। वह नगर एक-से-एक बढ़ कर भव्य और अपनी-अपनी चोटियों के द्वारा आकाश को चूमनेवाली अट्टालिकाओं के द्वारा अलंकृत था। देव-भवनों के समान सुन्दर वे सभी अट्टालिकाएँ उत्तम-से-उत्तम फलों तथा पुष्पों से सुशोभित वाटिकाओं से संलग्न थीं।

अपनी तपस्या के प्रभाव से रचित उस उत्तम नगर में श्री देवी क्षेमङ्करी अपनी अनुचरियों के साथ सुख-पूर्वक वास करने लगीं। कुछ समय के बाद एक दिन देवर्षि नारद जी श्री देवी जी के उस नगर में उनके दर्शन के निमित्त आए थे। श्री देवी जी ने ब्रह्मा के उन पुत्र का उचित स्वागत-सत्कार किया था। सङ्केत पाकर एक अनुचरी अर्घ्य-पाद्य आदि लेकर उपस्थित हुई थी। श्री देवर्षि नारद जी ने भी उचित सम्मान के साथ उस स्वागत-सामग्री को स्वीकार किया था।

देवर्षि नारद उस समय ब्रह्म-लोक से भगवती क्षेमङ्करी के दर्शन के निमित्त आए हुए थे। यहाँ आकर उनके नगर की शोभा तथा वहाँ का धन-विभव देखकर उन्होंने अपार आश्चर्य का अनुभव किया। श्री देवी जी की स्तुति करके तथा उनके सम्भाषण के सुख का अनुभव करके उन्होंने उनसे विदा ली और अभीष्ट स्थान को चले गए।

श्री नारद जी अपनी तपस्या के प्रभाव से इच्छानुसार कहीं भी जाने में समर्थ थे। आकाश-मार्ग से यात्रा करने की क्षमता उन्हें प्राप्त थी। श्री देवी जी के स्थान से चलकर वे सीधे दैत्य-राज महिषासुर के स्थान पर गए। उसकी राजधानी समुद्र के मध्य भाग में वर्तमान थी और अपने युग का

वह एक अपरिमित क्षमता-शाली पुरुष था। उचित शिष्टाचार के पश्चात् श्री नारद जी ने भगवती क्षेमङ्करी के शरीर में वर्तमान अपार तेज तथा उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शोभा का वर्णन किया। श्री देवी जी की रूप-राशि का अत्यन्त ही मनोमोहक रूप से वर्णन करते हुए उन्होंने कहा—"इस प्रकार का स्त्री-रत्न विश्व के किसी भी समुदाय—देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नर आदि में देखने में नहीं आया।"

अपने कौशल-पूर्ण वार्त्तालाप के द्वारा महिषासुर के हृदय में श्री देवी जी को पत्नी के रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न करने के पश्चात् देवर्षि ने उससे विदा ली। इधर उनके जाने के बाद ही महिषासुर ने अपने मन्त्रियों को बुलवाया और उन सबसे परामर्श करके देवर्षि के द्वारा बताई गई रत्न-स्वरूपा रमणी को प्राप्त करने के लिए एक योजना बनाई।

महिषासुर के दल में एक-से-एक बढ़कर बल-पराक्रम से सम्पन्न वीर दैत्य थे, जिनमें अद्‌भुत युद्ध-कौशल के साथ ही आवश्यकता के अनुसार अपना रूप परिवर्तित कर लेने की भी क्षमता विद्यमान थी। स्वयं महिषासुर भी असाधारण प्रकार का योद्धा होने के साथ ही रूप-परिवर्तन करने की इस क्षमता से सम्पन्न था।

विस्तार-भय से महिषासुर के मन्त्रियों तथा उसके दल के विशिष्ट वीरों की नामावली और उन सबके सामर्थ्य का विवरण इस छोटे-से लेख के द्वारा देना सम्भव नहीं है। साथ ही, नारद जी के मुख से भगवती क्षेमङ्करी की रूप-राशि का वर्णन सुनकर उन्हें प्राप्त करने की कामना जब महिषासुर ने व्यक्त की थी, तब उसके किस मन्त्री ने क्या परामर्श दिया था, इसका विवरण देना यहाँ सम्भव नहीं है, किन्तु विचार-विनिमय के पश्चात् देव-गण पर आक्रमण करके उन सबको पराजित करने का निश्चय हुआ।

यथा-समय दैत्य-सेना ने देव-लोक पर आक्रमण किया और इन्द्र के सहित समस्त आदित्य-गण, रुद्र-गण, वसु-गण—आदि दैत्य योद्धाओं के द्वारा पराजित हो गए और वे सब-के-सब स्वर्ग-लोक को छोड़कर प्राण-रक्षा के लिए मारे-मारे फिरने लगे।

इस प्रकार इन्द्र के सिंहासन पर विराजमान होने के बाद महिषासुर ने विद्युत्-प्रभ नामक अपने अनुचर को, जो स्वयं एक क्षमता-सम्पन्न दैत्य वीर था, दूत के रूप में पुष्कर-क्षेत्र को भगवती क्षेमङ्करी के पास भेजा।

पुष्कर-क्षेत्र में जाकर महिषासुर के उस दूत ने श्री देवी जी की पुरी में प्रवेश किया। वह पुरी उसे देव-राज इन्द्र की पुरी से, शोभा-सौन्दर्य की दृष्टि से, तनिक भी हीन नहीं प्रतीत हुई। श्री देवी जी के सम्मुख जाकर उसने उनके प्रति उचित सम्मान का भाव प्रकट किया और अपने आपको दैत्य-राज महिषासुर का 'विद्युत्-प्रभ' नामक दूत बताया। अपने स्वामी का सन्देश सुनाने से पहले उसने उनका परिचय देना आवश्यक समझा। उस सम्बन्ध में विद्युत्-प्रभ ने कहा—

"हे देवी जी! श्री नर्मदा जी के तट पर माहिष्मती नाम की एक पवित्र नगरी है। उस नगरी में सिन्धु-द्वीप नामक एक तपस्वी रहा करते हैं। उसी नगरी में दैत्य-राज विप्रचित्ति भी रहा करते हैं। माहिष्मती नाम की उनकी एक अपूर्व सुन्दर कन्या है, जो अपनी अपार रूप-राशि के कारण समस्त भू-मण्डल में अद्वितीय है।

"एक बार वन-विहार के विचार से दैत्य-राज की वह कन्या अपनी सखियों के एक बहुत बड़े दल के साथ मन्दराचल के एक सुरम्य स्थान पर गई थी। उसकी सखियाँ भी एक-से-एक बढ़कर

अपार रूप-राशि से युक्त होने के साथ ही यौवन के उन्माद से युक्त थीं। उसी स्थान पर उत्तम कोटि के फलों तथा पुष्पों के वृक्षों से सुशोभित एक आश्रम था। उस आश्रम के अधिष्ठाता एक परम तपस्वी मुनि थे, जो अनेक तपस्वियों के साथ उस आश्रम में वास करते हुए एकाग्र मन से जप-तप, भजन-पूजन तथा ब्रह्म के ध्यान में अपना समय बिताया करते थे।

"माहिष्मती को वह आश्रम बहुत पसन्द आया और उसके मन में आया कि 'तपस्वियों को यहाँ से किसी प्रकार से भगाया जाय और इस आश्रम को अपने अधिकार में करके सखियों के सहित क्रीड़ा-कौतुक करके यहाँ पर सुख से समय बिताया जाय।'

"इस प्रकार उस तपोभूमि को अपने अधिकार में लाने के लोभ से माहिष्मती ने माया का आश्रय लिया और सखियों के सहित उसने भैंस का रूप धारण किया। बाद को वे सब उछल-कूद कर सींगों से आश्रम की भूमि को कुरेदने लगीं। साथ ही अन्य प्रकार के उपद्रव करने लगीं। वे सब इस सब उपद्रव के कार्य तपस्वी-गण के मन में भय का सञ्चार करने के उद्देश्य से कर रही थीं।

"इधर आश्रम में एकाएक इतनी अधिक भैंसों को आई हुई देखकर और साथ ही यह देखकर कि वे सब तरह-तरह के उपद्रव करके आश्रम में अशान्ति का वातावरण उपस्थित करने का प्रयत्न कर रही हैं, आश्रम के अधिष्ठाता मुनि को चिन्ता हुई। ध्यान-योग से उन्होंने दैत्य-कन्या माहिष्मती के दूषित मनोभाव का ज्ञान प्राप्त कर लिया और उसे भैंस ही हो जाने का शाप दे दिया।

"मुनि-वर की वह शाप-वाणी सुनकर दैत्य-कन्या माहिष्मती ने अपार दुःख का अनुभव किया। अपने स्वाभाविक रूप में आकर अनुताप का भाव व्यक्त करते-करते वह मुनि के चरणों पर लोट पड़ी और बार-बार क्षमा माँगने लगी। माहिष्मती की अत्यन्त करुण अवस्था और रोते-रोते बार-बार क्षमा माँगने के कारण मुनि दयार्द्र हो उठे। उन्होंने कहा—'मेरा शाप अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु महिषी-रूप में एक पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् तुम फिर अपनी मूल अवस्था को प्राप्त हो जाओगी।'

"उसके बाद माहिष्मती अपने स्थान पर लौट आई और मुनि के शाप के अनुसार एक महिषी के ही रूप में वास करने लगी।

"एक दिन श्री नर्मदा जी में स्नान करने के पश्चात् तपस्वी सिन्धु-द्वीप अपने नित्य-कर्म आरम्भ करने जा रहे थे। दैव-योग से ठीक उसी समय एक अनिन्द्य सुन्दरी दैत्य-कन्या नर्मदा जी में स्नान करने के लिए आई। उस दैत्य-कन्या का नाम विद्युन्मती था। तट पर अपने वस्त्र रखकर नग्न हो वह जल में उतर गई। उसका वह नग्न रूप देखकर तपस्वी सिन्धु-द्वीप का मन चञ्चल हो उठा और वीर्य स्खलित हो गया। तट पर एक पत्थर था, उस पर एक स्थान पर एक गड्ढा-सा बन गया था। तपस्वी सिन्धु-द्वीप ने वह वीर्य उसी गड्ढे में उठा कर रख दिया। दैव-योग से उसके बाद ही महिषी-रूप-धारिणी माहिष्मती वहाँ आई और मुनि के उस वीर्य को, जिसमें से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आ रही थी, पान कर लिया।

"इस प्रकार परम तपस्वी सिन्धु-द्वीप का वीर्य धारण करके दैत्य-युवती, जो भैंस के रूप में जीवन बिता रही थी, गर्भवती हुई और यथा-समय उसने एक परम तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। उसका वही पुत्र आगे चलकर परम प्रतापी 'महिषासुर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और दैत्य-समुदाय का अग्रणी होने के साथ ही इन्द्र-आदि देव-गण पर विजय प्राप्त करके तीनों ही लोकों का अधीश्वर हो गया।"

इस प्रकार भगवती क्षेमङ्करी को महिषासुर के जन्म का वृत्तान्त बताने के बाद विद्युत्-प्रभ ने उसके प्रभाव तथा बल-पौरुष और शरीर की सुन्दरता आदि के विषय में बताया। उसका सन्देश

(शेष पृष्ठ ४ पर)

चैत्र का नवरात्र

'चैत्र का नवरात्र' आ रहा है। मां की स्थापना घर-घर होगी, पर हम यह नहीं जानते कि मां का साक्षात्कार भी हो सकता है। मां बच्चों की 'प्रेम-पुकार' से रुक नहीं सकती, पर वैसी 'प्रेम-पुकार' निःस्वार्थ और गहरे प्रेम की होनी चाहिए। मां की स्थापना विधि से की जावे। 'कलश'-स्थापना हो। दो अखण्ड 'दीपक' जलाए जाएँ और वहाँ शाम-सबेरे पूजा के पश्चात् स्त्री-पुरुष मिलकर भक्ति से कीर्तन करें। माँ का कीर्तन प्रेम-मय अति-भाव-युक्त पुकार से नौ दिनों तक होवे। हर कीर्तन के अन्त में, आरती के पश्चात् उस कीर्तन का फल जग-कल्याणार्थ ब्रह्मार्पण कर दिया जावे। जहाँ इस प्रकार क्रिया होगी, वहाँ माँ की उपस्थिति तो अवश्य होगी, चाहे एक बालिका के रूप में हो, चाहे लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा के रूप में हो। यदि ऐसा केन्द्र एक साल तक कायम रहे और वहाँ निःस्वार्थ प्रेम और भक्ति का कीर्तन जग-कल्याणार्थ चलता रहे, तो वह स्थान पवित्र 'केन्द्र' बन जायगा और सञ्चालकों को उसका अनुभव भी किसी-न-किसी प्रकार अवश्य होगा। आशा है कि पाठक-गण इस आनेवाले 'नवरात्र' के पूर्व ही भक्तों को इसकी खबर देकर पुण्य प्राप्त करेंगे।

सुनकर उन्हें परामर्श दिया कि वे उसे अपना स्वामी बनाकर अपनी इस सौन्दर्य-राशि तथा युवावस्था में रमणी-मात्र के हृदय में उत्पन्न होने-वाली कामनाओं को कृतार्थ करें।

विद्युत्-प्रभ ने भगवती क्षेमङ्करी से ये बातें बहुत कवित्व-मय भाषा तथा प्रभावोत्पादक ढङ्ग से कही थीं, किन्तु श्री देवी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया, एक बड़े जोर के ठहाके की हँसी हँसकर रह गईं। श्री देवी जी का वह ठहाका समाज विश्व में व्याप्त हो उठा। साथ ही उस दूत ने चकित भाव से देखा, मानों समस्त विश्व इन श्री देवी जी की कोख में वर्तमान है।

जया नाम की एक परम रूपवती देवी जी की दासी थी। उसने उत्तर में कहा--'हे दूत! जिन श्री देवी जी को अपने स्वामी के निमित्त प्राप्त करना चाहते हो, उन्होंने आजन्म कुमारी रहने का व्रत स्वीकार किया है। स्वयं वे क्या, उनके साथ जो इतनी कुमारियाँ हैं, उनमें से किसी को भी प्राप्त करना तुम्हारे स्वामी के लिए सम्भव नहीं है।'

इस प्रकार का निराशा-जनक उत्तर पाकर महिषासुर का दूत वहाँ से चला गया। उसके वहाँ से रवाना होते ही आकाश-मार्ग से श्री नारद जी आए। उन्होंने श्री देवी जी को देव-गण के पराभव का हाल बताया। साथ ही उन सबका यह सन्देश कहकर कि उन्हें प्राप्त करने के लिए दैत्यों की एक विशाल सेना लेकर दैत्य-राज महिषासुर आएगा। उन्हें चाहिए कि वे उस सेना का सामना करके दैत्य-कुल का संहार करें।

अपनी बात कहकर श्री नारद जी अन्तर्धान हो गए। उसके बाद ही श्री देवी जी की आज्ञा से उनके आश्रम में वर्तमान सभी कुमारियाँ भयङ्कर रूप धारण करके समस्त प्रकार की युद्धोपयोगी सामग्रियों से सुसज्जित हो गईं।

यथा-समय दैत्यों की प्रबल सेना आई और उसका संहार हो गया। अन्त में श्री देवी जी के द्वारा महिषासुर भी मारा गया। महिषासुर का वध करके श्री देवी जी ने 'महिष-मर्दिनी' की आख्या प्राप्त की और देव-गण भक्ति-गद्गद कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे।

श्री देवी जी की यह 'महिष-मर्दिनी'-मूर्ति भक्त-जनों को दर्शन के द्वारा कृतार्थ करने के लिए देश के अनेक स्थानों पर विद्यमान है।

सप्तमी महा-विद्या

● श्रीबदनसिंह, रायभा, अगरा (उ० प्र०)

'शतपथ ब्राह्मण' (१-१-२) में '**दशाक्षर वै विराट्**' कहा है। 'विराट् पुरुष' के १० अङ्ग हैं—१ ऋक्, २ यजु, ३ साम, ४ यत-जू, ५ अप, ६ वायु, ७ सोम, ८ यम, ९ अग्नि, १० आदित्य। इसी दशाक्षर विराट् पुरुष का दूसरा नाम '**यज्ञ-पुरुष**' है, जिससे समस्त सृष्टि की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि इसे 'प्रजापति' कहा जाता है। विश्व-रूप विराट् पुरुष के दश अवयव हैं। प्रजापत्या विश्व-विद्या को 'आगम' और 'निगम' दोनों में ही दशावयव माना गया है।

सर्व-प्रथम कुछ भी नहीं था, केवल शून्य या 'बिन्दु'-मात्र था। यह 'बिन्दु' उन ब्रह्माक्षरों का प्रथम रूप है, जिनसे नवाक्षर का विराट् उत्पन्न होता है और यह 'विन्दु' पूर्ण है। शून्य से ही १ से ९ तक की संख्याएँ विकसित हुई हैं। नौ पर संख्या समाप्त हो जाती है और फिर 'शून्य' से १ का सम्वन्ध होने पर १० संख्या बनती है। १, २, ३,……किसी भी संख्या का योग-फल समान नहीं आता, वही ९ शेष रह जाता है। अतः दसवाँ ही महत्त्व-पूर्ण है और वही 'महा-काल' नाम का विश्वातीत परात्पर है। उस शून्य-रूप पूर्ण पुरुष के उदर में नवाँ अक्षर विराट् समाया हुआ है। उसी पूर्ण रूप को दसवाँ प्रतिष्ठा नाम 'अहः' बतलाया गया है। इसी पूर्ण-ब्रह्म का निरूपण श्रुति इस प्रकार करती है—

'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्, यस्मान्नणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः, तेनेदं पूर्ण - पुरुषेण सर्वम्॥

दश संख्या का शून्य अङ्क स्वतन्त्र विभाग है और वही विन्दु है तथा ९ का जो विभाग है, वही विराट् है। इस प्रकार वेदोक्त सृष्टि-विद्या दस भागों में विभक्त है। पुरुष-प्रकृति से सम्वन्ध है, इसलिए आगम-शास्त्र भी सृष्टि-विद्या-रूपा दस शक्तियों का निरूपण करता है। वही शक्ति-प्रपञ्च दश-महा-विद्या नाम से प्रसिद्ध है। उसी महा-काल पुरुष की शक्ति 'महा-काली' कही जाती है।

दश-महा-विद्याओं का क्रम—१ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्न-मस्ता, ७ धूमावती, ८ बगलामुखी, ९ मातङ्गी और १० कमला—इस प्रकार है। इनमें प्रथम '**काली**' हैं, जो सृष्टि के पूर्व का रूप है और इनको ब्रह्म की इच्छा-शक्ति के रूप में माना जाता है। द्वितीय '**तारा**' हैं, जो ज्ञान-शक्ति मानी जाती हैं और तृतीय '**षोडशी**' या 'श्री विद्या' हैं, जो ब्रह्म की क्रिया-शक्ति कही जाती हैं। वास्तव में श्री विद्या के ही ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति तथा इच्छा-शक्ति—ये तीन स्वरूप हैं। इच्छा-शक्ति उसका शिरो-भाग है, ज्ञान-शक्ति मध्य-भाग है और क्रिया-शक्ति अधो-भाग।

चतुर्थ महा-विद्या '**भुवनेश्वरी**' हैं। ये सम्पूर्ण भुवनों की अधिष्ठात्री हैं। सृष्टि-कार्य का श्री गणेश इन्हीं परमेश्वरी के द्वारा होता है। पञ्चमी महा-विद्या '**भैरवी**' हैं। आत्म-शक्ति-स्वरूपिणी श्री विद्या जब लीला से शरीर धारण करती हैं, तब वेद-शास्त्र उनका निरूपण करने लगते हैं और वह महा-विद्या 'भैरवी' कहलाती हैं। छठवीं महा-विद्या '**छिन्न-मस्ता**' योग-विद्या की अधिष्ठात्री हैं और श्रम का प्रतीक हैं, भगवती का छिन्न-शिर और रक्त की त्रि-धाराएँ कुण्डलिनी-स्वरूप में सृष्टि के परिपालन की सूचक हैं। इस अवस्था में सृष्टि की सूक्ष्म अवस्था होती है। वे स्वरूप तो धारण कर चुकी होती हैं, परन्तु अदृश्य रूप ही उनका स्वरूप है।

सृष्टि-कार्य में अनेक बाधाएँ आती हैं। दैत्य और दानव बाधाएँ ही उत्पन्न करते रहते हैं। इस समय भगवती को दुष्टों के संहार हेतु बड़े युद्ध लड़ने पड़ते हैं। वे कृश-काय होकर वृद्धा हो जाती हैं। वैधव्यता स्पष्ट दिखाई देने लगती है। वे साधक के समस्त दुर्गुणों का नाश कर महा-वैराग्य-भाव उत्पन्न करनेवाली महा-शक्ति हैं, जिनके बिना मोक्ष सम्भव नहीं होता। यह अवस्था योग की चरमावस्था है। अब सृष्टि का स्थूल-रूप उभरने लगता है। दुष्ट और दैत्यों से (साधक को अपने आन्तरिक शत्रुओं से) भारी संघर्ष करना होता है। शान्ति स्थापित होते-होते सृष्टि के प्रकटीकरण हेतु धूम्रता का वातावरण व्याप्त हो जाता है। तब भगवती ज्येष्ठा के रूप में **'धूमावती'** प्रकट होती हैं। वे सप्तमी हमा-विद्या कहलाती हैं।

शान्ति-स्थापना के पश्चात् सृष्टि का भाग्योदय होता है, जिसका प्रतीक पीत-रङ्ग माना गया गया है। इस सौभाग्य की अधिष्ठात्री अष्टमी महा-विद्या **'बगलामुखी'** नाम से जानी जाती हैं। सृष्टि के सौभाग्योदय-स्वरूप चारों ओर स्वर-लहरियाँ सुनाई देती हैं, प्रसन्नता और आनन्द का वातावरण होता है। शब्द का स्थूल-रूप वैखरी बन कर प्रकट होता है। इस अवस्था में स्वर-लहरी की अधिष्ठात्री नवमी महा-विद्या का नाम **'मातङ्गी'** होता है।

अब तक सृष्टि का पूर्ण विकास हो जाता है। प्रत्येक स्थान पर पूर्णानन्द और सुख-ही-सुख व्याप्त हो जाता है। इस वैभव और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री दशमी महा-विद्या को **'कमला'** नाम से जाना जाता है। इस प्रकार उक्त दश - महा - विद्याएँ सृष्टि के क्रमोत्तर विकास के ही नाम-करण हैं।

आज संसार भोग-लालसा के शिखर पर चढ़ने के लिए तेजी से दौड़ रहा है। राजनीति और अर्थ-शास्त्र भौतिक तथा सामाजिक जीवन का विश्लेषण कर रहे हैं, किन्तु उस ज्योति की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है, जो मानव शरीर के अन्दर जल रही है। हम सब जानते हैं कि जीवन की सबसे बड़ी यातना 'मृत्यु' है, अतः जीवन को सुखी बनाने के लिए मृत्यु पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। भौतिकता-वादी 'असुर' और अध्यात्म-वादी 'देव' दोनों ने सहयोग कर त्रिगुणात्मिका प्रकृति का मन्थन कर अमृत को प्राप्त किया। इस विराट् विश्व में विष के रूप में 'तम', मदिरा के रूप में 'रज' और अमृत के रूप में 'सत्व' दृष्टि-गोचर हैं। अमृत-प्राप्ति में दानव और देवों के पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण थे। दानव अपने भौतिक शरीर को अमर करना चाहते थे, परन्तु देवता जानते थे कि मानव जड़ और चेतन दोनों का समन्वय है। जड़ तो विकारी, नाशवान और परिवर्तन-शील है। उसके रूप में आमूल परिवर्तन का ही नाम तो 'मृत्यु' है। अतः चेतन को जड़ के सम्पर्क से सर्वदा पृथक् कर देना ही अमरत्व की प्राप्ति है।

अधिकांश साधक सप्तमी महा-विद्या 'धूमावती' को मनो-निग्रह की देवी न मानकर अभिचारक प्रयोगों की देवी मानते हैं। वे श्री धूमावती को मात्र तामस और राजस उपासना-प्रणालियों से उपास्य देवी की श्रेणी प्रदान करते हैं, परन्तु यह बात वास्तविकता से परे है।

रज, सत्त्व, तम—इन तीनों गुणों के आधार पर तीन प्रकार के पुरुष होते हैं और तदनुसार उनकी प्रकृति तथा श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती हैं। उन्हीं के हितार्थ गिरजा-पति श्री शिव ने आगम-ग्रन्थों तथा विस्तार-पूर्वक नाना-विध मार्गों को प्रकल्पित किया है। संसार की प्रवृत्ति के लिए जिस प्रकार वेदों में अनेक कामना-प्रद प्रयोग प्राप्त होते हैं, ठीक उसी प्रकार आगम में भी अनेक प्रयोग विद्यमान हैं, किन्तु यह एक शास्त्र-सम्मत सिद्धान्त है कि ये सभी प्रयोग सबके लिए नहीं होते, इनकी सफलता अन-

धिकारी को प्राप्त न होकर अधिकारी को ही प्राप्त होती है। इसी अधिकार-भेद को दृष्टि में रखकर ही शाक्त ग्रन्थों में सभी प्रकार के उपासना-मार्गों का निरूपण किया गया है, जिससे साधक अपने अधिकार के अनुसार अपने अभीष्ट मार्ग को चुनकर अपना हित-साधन कर सकें।

साधक को उसके अधिकार और पात्रता के अनुसार ही मार्ग प्राप्त होना चाहिए, अन्यथा साधक को असफलता और क्षति होती है। बुद्धि, धैर्य और स्मृति अर्थात् आत्म-ज्ञान से भ्रष्ट होकर जो कर्म किया जाता है, वह प्रज्ञापराध की कोटि में आता है, जिससे सर्व-प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। वर्तमान समय में देखा जा रहा है कि बुद्धि जो निर्णय करती है, वह स्वार्थ-मूलक निर्णय करती है। "स्वार्थी व्यक्ति कहता कुछ है और करता कुछ है। इस कपट-आचरण से अन्तरात्मा कुपित होकर उस व्यक्ति को दण्ड देती है। तब मन में अनेक प्रकार के दुष्ट भाव उत्पन्न होते हैं और भगवती धूमावती की आराधना से कूट-कपट का नाश हो जाता है।

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, राग, द्वेष आदि जो मनो-विकार हैं, वे सब प्रज्ञापराध से उत्पन्न होते हैं। आज मनुष्य भौतिकता की चमक-दमक को देखकर ईश्वर की आराधना को तिलाञ्जलि देता जा रहा है और यदि वह कुछ करना चाहता है, तो वह भी रुपया-पैसा प्राप्त करने हेतु ही! आत्म-कल्याण की किसी को कोई परवाह नहीं है। संसार में राग और द्वेष-भाव बड़े प्रबल हैं, जो सभी प्रज्ञापराध मूलक हैं और इनका शमन भगवती धूमावती की निष्काम उपासना से शीघ्र एवं सहज भाव से हो जाता है।

जब बुद्धि निवृत हो जाती है, तो व्यक्ति और समाज की 'धृति' अर्थात् धैर्य भ्रष्ट हो जाता है। धैर्य न रहने से आत्म-स्मृति का भ्रष्ट होना भी स्वाभाविक है। इस विषय में महात्मा तुलसीदास जी ने 'विनय-पत्रिका' में कहा है—

'कबहुँ मन विश्राम न मान्यो—निश-दिन भ्रमति बिसार सहज सुख, जहँ-तहँ इन्द्रिन तान्यो।'

पूर्वाचार्यों ने आगम-निगम-शास्त्र-रूपी क्षीर-सागर का मन्थन कर भगवती के नाम और स्तुति तथा मन्त्रों का अमृत निकाला है। सागर के गर्भ में तो विष भी था, मदिरा भी और अमृत भी। भव-सागर के अन्तःस्थल में तम है, रज है और सत्त्व भी है। चाहे कोई देश या धर्म या सम्प्रदाय रज और तम का भले ही अन्वेषण कर रहा हो, परन्तु हमारे सद्-गुरुदेव, प्रातः-स्मरणीय 'राष्ट्र-गुरु' श्री पीताम्बर-पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज ने तो केवल सत्त्व को ही अपनाया है। भगवती धूमावती की सात्त्विक साधना-प्रणाली ही हमारी परम्परा में ग्रहणीय है।

यह जानने के लिए कि भगवती धूमावती क्या हैं, इस समय इतना जान लेना ही सर्वथा उचित होगा कि—'सारा विश्व सूक्ष्म रूप धारण कर महा-प्रलय-काल में जिनमें जाकर मिल जाता है, उन महा-माया परमेश्वरी का नाम 'धूमावती' है। यह जीवों को तारनेवाली मूर्ति है।

जिस प्रकार अन्न में मिश्रित तमाम दूषित पदार्थ शूर्प (सूप) से अलग कर दिए जाते हैं, उसी प्रकार भगवती धूमावती की उपासना से साधक के अन्तःकरण के सम्पूर्ण मनोविकार नष्ट हो जाते हैं और उसे कर्म-संस्कार से निवृत्ति मिल जाती है। भगवती धूमावती के हाथ में 'शूर्प' इसी बात का प्रतीक है। वस्तुतः श्री बगलामुखी ही धूमावती हैं। जिस समय भगवती सुवर्ण-सिंहासन पर विराजमाना पीत-वसना हैं, तब वे श्री बगलामुखी हैं और जब वे काक-रथारूढ़ा धूम्र-वर्णा हैं, तो श्री धूमावती हैं। अतः वे ब्रह्मास्त्र-विद्या ही हैं।

'समता' का प्रतीक–तन्त्र-शास्त्र

• राजगुरु पण्डित हरिदत्त शास्त्री

जीवन में जितनी कठिनाइयाँ, संघर्षण, दुःख, दोष आते हैं, उन सबका मौलिक स्रोत विषमता है। विषमता को दूर कर, 'समता' को लाने के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न-शीलता चलती आई है, परन्तु विषमता का प्रवाह निरन्तर विभिन्न रूपों में चलता जा रहा है। संसार भर के सुख-शान्ति-मय जीवन के विशेषज्ञ सब प्रकार छान-बीन करके इसी निर्णय पर आए हैं कि देश में शान्ति और सद्भावना का जीवन 'समता' से ही होगा, परन्तु संसार की चरित्रावली विषमता को प्रोत्साहन और प्रसारण-शील है।

'समता' शान्ति औरसुख-मय जीवन का आधार है। मानव संसार में 'समता' ही सर्वोच्च भावना है और वही परम पुरुषार्थ है। इसको भारत-वर्ष ने ही संसार को सिखाया है। हमारे शास्त्र कहते हैं—"समं सर्वेषु भूतेषु"—प्राणि-मात्र में समता को अनुभव करने से भगवान् की प्राप्ति अर्थात् शान्ति-सुख की प्राप्ति हो जाती है। इस समता की नई-पुरानी खोज करनेवाले अपने-अपने विचारों के अनुसार खोज कर रहे हैं तथा समता-प्राप्ति की चेष्टा करते जाते हैं परन्तु खेद है कि उनकी खोज और प्रयत्न से समता प्राप्त नहीं हुई है।

वस्तुतः 'समता' बाह्य प्रकृति के कार्य से नहीं होगी, त्रि-गुणात्मक प्रकृति और उसके कार्य तो सब विषम ही हैं और विषम ही रहेंगे। 'समता' अन्तर्भाव से ही प्राप्य है। भगवान् शङ्कर, भगवान् बुद्ध-देव आदियों ने संसार के वास्तविक हित के लिए अवतरण किया था। उन्होंने स्पष्ट किया है कि बाह्य-साधनों और बाहर की व्यावहारिक एकता मात्र से 'समता' की भावना उत्पन्न नहीं होती। 'समता' साजात्य स्तर पर ही होती है। संसार में बाहर के सम्बन्धों को मिलाना और 'मनुष्य मात्र एक हैं' इतने ही ज्ञान से समता नहीं होगी। मनुष्य-जाति, वृक्ष-जाति, पशु-जाति आदि विभिन्न आकृतियों और विभिन्न गुण-कर्मों से विषम दीख पड़ती हुई भी आत्म-दृष्टि से सम हैं। अतः देश-जाति में 'समता' और सद्भावना के विकास का साधन एक-मात्र 'आत्म-ज्ञान' ही है।

इसीलिए–'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'–यह ढिंढोरा भगवान् शङ्कर ने संसार में घोषित किया अर्थात् जब तक आत्म-ज्ञान का विकास न हो, तब तक 'समता' का स्वप्न केवल हठ-मात्र है। भारत-वर्ष ने इस हल को सबसे पहले निकालकर संसार के सामने रखा। जिन देशों ने इसका अनुकरण किया, उन्होंने शान्ति-सद्भावना से अपने देश को सुख-मय बनाने में सच्ची उन्नति की है।

देश में 'समता' की भावना का प्रसारण करने के लिए सबसे प्रथम मनुष्य-जीवन का निर्वाह, जितनी सादगी और न्यून सामग्री से हो सके, होना चाहिए। अपने जीवन का स्तर ऊँचा करने को, अपनी आवश्यकताओं को स्वल्प-तम मात्रा में लाने का मार्ग अपनावें। बहुमूल्य प्राप्य विषय-सामग्री की लपक ही 'समता' की घातक है। सबके साथ खान-पान और व्यवहार-सम्बन्ध जोड़ने से 'समता' नहीं मिलती। 'समता' तो आत्म-विकासकारी सादगी के जीवन को उच्च-स्तर तक समझ कर, उस प्रगति को अपनाने से ही होगी।

इस 'समता'-सद्भावना का स्थिरीकरण 'तन्त्र-शास्त्र' ने किया है। 'समता' के विकास के लिए ही 'तान्त्रिक' दीक्षा में 'स्त्री-मात्र' को 'भगवती' और 'पुरुष-मात्र' को 'शिव' बताया है। इस दीक्षा से साधक आत्म-बोध प्राप्त कर जीव मात्र में अपने को देखता है।

ॐ नमः पर-देवतायै

कामाख्या तन्त्रम्

हिन्दी टीका सहित

प्रथमः पटलः

योनि-रूपायाः कामाख्या-देव्याः स्वरूपम्
(योनि-रूपा कामाख्या देवी का स्वरूप)

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

भगवन्, सर्व-धर्मज्ञ ! सर्व - विद्या - प्रिय, प्रभो ! सर्वदानन्द - हृदय ! सर्वागम - प्रकाशक ॥१
श्रुतानि सर्व-तन्त्राणि साधनानि च भूरिशः । विद्यास्ताः सकला देव ! फलानि त्वत्-प्रसादतः ॥२
सारात् सार-तरं तन्त्रं जानासि किं वद प्रभो ! अतीवेदं रहः-स्थानं तेनाहं श्रवणोद्यता ॥३

श्री देवी ने कहा—हे भगवन् ! हे प्रभो ! आप सभी धर्मों के ज्ञाता, सभी विद्याओं के स्वामी, सभी आगमों के प्रकाशक और सदैव आनन्द-मय हृदयवाले हैं । हे देव ! मैंने सुना है कि आपकी ही कृपा से समस्त तन्त्रों, सभी प्रकार की साधनाओं और सब प्रकार की विद्याओं की उपासना का फल मिलता है । हे प्रभो ! श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ जो तन्त्र आपको ज्ञात हो और अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्म-प्रतिपादक जो अपौरुषेय ज्ञान आज भी गुप्त हो, उसे सुनने की मेरी इच्छा है ॥१-३॥

॥ श्रीशिव उवाच ॥

शृणु देवि ! मुदा भद्रे ! मदीये प्राण-वल्लभे ! योनि-रूपा महा-विद्या कामाख्या वर-दायिनी ॥४
वरदाऽऽनन्ददा नित्या महा-विभव-वर्द्धिनी । सर्वेषां जननी साऽपि सर्वेषां तारिणी मता ॥५
रमणी चैव सर्वेषां स्थूला सूक्ष्मा सदा शुभा । तस्यास्तन्त्रं प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ॥६

श्री शिव बोले—हे प्राण-वल्लभे ! प्रश्न का उत्तर देता हूँ, सुनो । वर-दायिनी महा-माया कामाख्या योनि-रूपा हैं वे नित्या हैं, वर और आनन्द-दात्री हैं तथा महान् ऐश्वर्य को बढ़ानेवाली हैं । वे सबकी जननी और रक्षा-कारिणी हैं । वे सदैव स्थूल और सूक्ष्म सभी की मूल-भूता शक्ति-स्वरूपा कल्याण-कारिणी हैं । मैं उन्हीं महा-विद्या, विराट् स्वरूपा 'कामाख्या' का तन्त्र बताता हूँ । अत्यन्त सावधान चित्त से सुनो ॥४-६॥

निखिलासु च विद्यासु ये ये सिध्यन्ति साधकाः । यत्र कुत्रापि केनापि कामाख्या फल-दायिनी ॥७
कामाख्या-विमुखा लोका निन्दिता भुवन-त्रये । बिना कामात्मिकां काऽपि न दात्री सिद्धि-सम्पदाम् ॥८

सारे विश्व में जितने प्रकार की विद्याओं की साधना द्वारा साधक लोग जिन विविध सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, उन सभी के क्षेत्र में एक-मात्र 'कामाख्या' ही वर-दायिनी अर्थात् अभीष्ट फल-दात्री हैं। साधकों के लिए 'कामाख्या' सर्व-विद्या-स्वरूपिणी और सर्व-सिद्धि-दायिनी हैं। जो मनुष्य 'कामाख्या' के प्रति उदासीन रहता है, वह तीनों लोगों में निन्दित होता है एक-मात्र कामात्मिका महा-माया 'कामाख्या' को छोड़-कर अन्य कोई भी सिद्धि-रूपी सम्पदा देने में सक्षम नहीं है ।।७-८।।

कामाख्या च सदा धर्मः कामाख्या चार्थ एव च । कामाख्या काम-सम्पत्तिः कामाख्या मोक्ष एव च ।।९
निर्वाणं सैव देवेशि ! सैव सायुज्यमीरिता । सालोक्यं सह - रूपं च कामाख्या परमा गतिः ।।१०

'कामाख्या' सदैव धर्म और अर्थ-स्वरूपा हैं। 'कामाख्या' काम और मोक्ष-स्वरूपा हैं। 'कामाख्या' ही निर्वाण मुक्ति और 'कामाख्या' ही सायुज्य मुक्ति कही गई हैं। 'कामा-ख्या' ही सालोक्य और सारूप्य मुक्ति-स्वरूपा हैं। 'कामाख्या' हो श्रेष्ठ गति हैं ।।९-१०

शिवता ब्रह्मता देवि ! विष्णुता चन्द्रताऽपि च । देवत्वं सर्व-देवानां निश्चितं काम-रूपिणी ।।११
सर्वासामपि विद्यानां लौकिकं वाक्यमेव च । कामाख्याया महा-देव्याः स्वरूपं सर्वमेव हि ।।१२

हे देवि ! ब्रह्मत्व, विष्णुत्व, शिवत्व, चन्द्रत्व या समस्त देवताओं का देवत्व जिस शक्ति में निहित है, वही काम-रूपिणी 'कामाख्या' हैं। सभी विद्याओं का जो कुछ लौकिक वाक्य है, वही 'कामाख्या' हैं ।।११-१२।।

पश्य पश्य प्रिये ! सर्वं चिन्तयित्वा हृदि स्वयं । कामाख्यां न विना किञ्चिद् विद्यते भुवन-त्रये ।।१३
लक्ष-कोटि-महा-विद्यास्तन्त्रादौ परिकीर्तिताः । सारात् सार-तमा देवि ! सर्वेषां षोडशी मता ।।१४
तस्याश्च कारणं देवि ! कामाख्या जगदम्बिका । चन्द्र-कान्तिर्यथा देवि ! जायते लीयते पुनः ।।१५
स्थावराणि चराणीह नित्याऽनित्यानि यानि च । सत्यं पुनः सत्यं विना तां नैव जायते ।।१६

महा-विद्या-रूपिणी सभी महा - देवियाँ 'कामाख्या' के ही स्वरूप हैं। हे प्रिये ! अपने हृदय में उन सबका ध्यान कर स्वयं देख लो। तीनों लोकों में 'कामाख्या' के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। तन्त्रादि में लाखों करोड़ महा-विद्यायें वर्णित हैं। हे देवि ! उन सबमें सबसे श्रेष्ठ षोडशी ही मानी गई हैं। हे देवि ! उनकी मूल कारण जगदम्बा 'कामाख्या' ही हैं। हे देवि ! जिस प्रकार चन्द्रमा की कान्ति प्रकट होती है, फिर लुप्त हो जाती है और पुनः प्रकट होती है, उसी प्रकार स्थावर और जङ्गम तथा नित्य और अनित्य—जो कुछ भी है, वह सब 'कामाख्या' के बिना उत्पन्न नहीं होता—यह सर्वथा सत्य है ।।१३-१६।।

।। इति श्रीकामाख्या-तन्त्रे देवीश्वर-सम्वादे प्रथमः पटलः ।।

पाठान्तर

[प्रस्तुत संस्करण के प्रस्तुत करने में कलकत्ते के जीवानन्द विद्यासागर और नवभारत पब्लिशर्स तथा काशी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय द्वारा प्रकाशित संस्करणों से सहायता ली गई है। इन तीनों के पाठों में जो पाठान्तर मिलते हैं, उन सबका विवरण यहाँ शोधार्थियों के लिए सङ्कलित कर प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक]

श्लोक १—सर्व-विद्या-प्रिय : सर्व-विद्याऽधिप, प्रकाशक : विकाशक। २—श्रुतानि : शुभानि, साधनानि : यामलानि, भूरिशः : सर्वशः, विद्यास्ताः : विद्यायाः, विद्यास्था, त्वत्-प्रसादतः : तत्त्व-प्रसादतः। ३—तन्त्रं : मन्त्रं, अतीवेदं : अति-प्रियं, रहः-स्थानं : रहसि स्थानं, श्रवणोद्यता : श्रवणे श्रिता, श्रवणोष्यता। ४—मुदा भद्रे : प्रवक्ष्यामि, मदीये : मदीयं, मदीय-, वर-दायिनी : वर-वर्णिनि। ६—सदा शुभा : शुभा सदा। ७—निखिलासु च विद्यासु : विद्यासु सकला देवा, फल-दायिनी : सिद्धि-दायिनी, वर-दायिनी। ८—काऽपि : क्वापि। ९—कामाख्या च : कामाख्येव। १०—सैव : सर्व, सायुज्य-मीरितम् : सायुज्यमीरिता।

११-शिवता…चन्द्रताऽपि च : सेविता ब्रह्माद्यैर्देवि ! विष्णुना चन्द्रेणापि च, शिवत्वं ब्रह्मत्वं देवि ! विष्णुत्वं चन्द्रत्वमपि च। १२—लौकिकं : लौकिक्यं, वाक्यमेव च : वाक्यमस्ति च, वाच्यमेव च, कामाख्याया महा-देव्याः : कामाख्या या महा-विद्या, सर्वमेव हि : सर्वत्र वाह। १३—कामाख्यां न : कामाख्यां च, किञ्चिद् विद्यते : किञ्चिन्नास्ति तु, भुवन-त्रये : भुवनेषु च। १४—तन्त्रादौ : स्वतन्त्रादौ, सारात् सार-तमा : सारात् सारं उमा, सारात् सार-तरम्, सर्वेषां : सर्वासां। १५—तस्याश्च : तस्यापि, कामाख्या : कालिका, यथा : यदा। १६—नित्याऽनित्यानि : नित्याऽनित्या।

'नवभारत पब्लिशर्स', कलकत्ता के बँगला-संस्करण में श्लोक ७ के बाद एक अतिरिक्त पंक्ति निम्न प्रकार मिलती है—

कामाख्या सिद्धिदा तेषां सर्व-विद्या-स्वरूपिणी।

द्वितीयः पटलः

मन्त्रोद्धार (मन्त्र का उद्धार)

।। श्रीशिव-उवाच ।।

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! परात् परम्। यज्-ज्ञात्वा साधयेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ।।१
मन्त्रस्यास्य प्रतापेन मोहयेदखिलं जगत्। ब्रह्मादीन् मोहयेद् देवि ! बालकं जननी यथा ।।२
देव - दानव - गन्धर्व - किन्नरादीन् सुरेश्वरि ! मोहयेत् क्षण - मात्रेण प्रजासु नृपतिर्यथा ।।३

श्री शिव ने कहा—हे देवि ! मैं श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ 'मन्त्रोद्धार' को कहूँगा, जिसे जानकर देवताओं को भी सिद्धि प्राप्त होती है। सुनो। हे देवि ! इसके प्रभाव से सारा जगत् मुग्ध हो जाता है। जिस प्रकार बालक को माता मोहित करती है या राजा जिस प्रकार प्रजा को वशीभूत कर लेता है, उसी प्रकार हे सुरेश्वरि ! देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर आदि क्षण भर में वश में आ जाते हैं ।।१-३।।

मन्त्रस्य पुरतो देवि ! राजानं सचिवादयः । अन्ये च मानवाः सर्वे मेषादि - जन्तवो यथा ।।४
मोहयेन्नगरं राज्ञः स - हस्त्यश्व - रथादिकम् । उर्वश्याद्यास्तु स्वर्वेश्या राज-पत्न्यादिकाः क्षणात् ।।५

इस मन्त्र के सामने, हे देवि ! राजा और मन्त्री आदि तथा अन्य सभी मनुष्य भेड़ आदि पशुओं के समान वशीभूत हो जाते हैं । हाथी, घोड़े, रथ आदि के सहित सारी नगरी, राजा-रानी और उर्वशी आदि स्वर्ग को अप्सरायें भी इस मन्त्र के प्रभाव से क्षण भर में वशीभूत हो जाती हैं ।।४-५।।

स्तम्भनं मोहनं देवि ! क्षोभणं जृम्भणं तथा । द्रावणं भीषणं चैव विद्वेषोच्चाटने तथा ।।६
आकर्षणं च नारीणां विशेषेण महेश्वरि ! वशीकरणमन्यानि साधयेत् साधकोत्तमः ।।७

हे देवि, महेश्वरि ! श्रेष्ठ साधक इस मन्त्र से स्तम्भन, मोहन, क्षोभण, जृम्भण, द्रावण, त्रासन, विद्वेषण, उच्चाटन और विशेषकर स्त्रियों का आकर्षण तथा अन्य सबका वशीकरण करने में समर्थ होता है ।।६-७।।

अग्निः स्तम्भति वायुश्च सूर्यो वारि - समूहकः । कटाक्षेणैव सर्वाणि साधकस्य न चान्यथा ।।८
जगज्जयति मन्त्रज्ञः कामदेवो यथा जयी । तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चित् प्राण-वल्लभे ! ।।९

कटाक्ष मात्र से साधक अग्नि, सूर्य, वायु और जल-राशि—सभी को स्तम्भित कर देता है, इसमें सन्देह नहीं । हे प्राण-प्रिये ! इस मन्त्र का ज्ञाता कामदेव के समान जगत् को जीत लेता है । तीनों लोकों में उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं रहता ।।८-९।।

जृम्भणान्तं त्यक्त-पाशं यात्रा-वारण-रोहकम् । वाम-कर्ण - युतं देवि ! नाद - बिन्दु - युतं पुनः ।।१०
एतत्तु त्रिगुणी - कृत्य कल्प - वृक्ष - मनुं जपेत् । एकः वापि द्वयं वापि चतुर्थं वा जपेत् सुधीः ।।११

नाद-बिन्दु (ँ) से युक्त 'जृम्भणान्त' = 'त', 'यात्रा-वारण' = 'र', 'वाम-कर्ण' = 'ई' अर्थात् 'त्रीं'—इस वीज को त्रिगुणी-कृत करे—'त्रीं त्रीं त्रीं' । कल्प-वृक्ष के समान इस मन्त्र का जप करे । बुद्धिमान् साधक एक, दो या चार बार इसका जप करे ।।१०-११।।

कामाख्या-साधनं कार्यं सर्व-विद्यासु साधकैः । अन्यथा सिद्धि-हानिः स्याद् विघ्नस्तेषां पदे-पदे ।।१२
किं शाक्ता वैष्णवाः किं वा शैवा गाणपत्यकाः । महा-मायाऽऽवृताः सर्वे तैल-यन्त्रे वृषा इव ।।१३
अस्याश्च साधनं देवि ! शाक्तानामेव सुन्दरि ! नात्र चक्र-विशुद्धिस्तु कालादि-शोधनं न च ।।१४
कृते च नरकं याति सर्वं तस्य विनश्यति । क्लेश-शून्यं परं देवि ! साधनं द्रुत-पोषकम् ।।१५

सभी विद्याओं के साधकों को उक्त कामाख्या-मन्त्र की साधना करनी चाहिए, अन्यथा सिद्धि की हानि होती है और उनके पग-पग पर विघ्न होता है । शाक्त, वैष्णव, शैव, (सौर) और गाणपत्य–सभी देवताओं के उपासक महा-माया द्वारा उसी प्रकार नियन्त्रित रहते हैं, जिस प्रकार तेली का बैल । अतः हे देवि ! उक्त मन्त्र की साधना शाक्तों के

लिए आवश्यक है। इस मन्त्र की साधना में चक्रादि-शोधन या कालादि-शोधन की आवश्यकता नहीं है। जो इस मन्त्र के सम्बन्ध में शोधन-विचार करता है, उसका सब कुछ नष्ट हो जाता है और वह नरक में जाता है। हे देवि ! इस मन्त्र की साधना में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और इसके द्वारा शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥१२-१५

॥ इति श्रीकामाख्या-तन्त्रे देवीश्वर-सम्वादे द्वितीयः पटलः ॥

तृतीयः पटलः

काली-तारा-मन्त्र-दान-काले चक्रादि-गणना-निषेधः

(काली-तारा के मन्त्र देने में चक्रादि-गणना का निषेध)

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

काली-तारा-मन्त्र-दाने चक्र-चिन्तां करोति यः। का गतिस्तस्य देवेश ! निस्तारो विद्यते न वा ? ॥१

श्री देवी ने कहा—काली-तारा का मन्त्र देने में जो चक्र-विचार करता है, उसकी क्या दशा होती है ? उसके उद्धार का क्या कोई उपाय नहीं है ? ॥१॥

॥ श्रीशिव उवाच ॥

वयमग्निश्च कालोऽपि ये ये याता महेश्वरि ! किं ब्रूमो देव-देवेशि ! कालिका-तारिणी-मनुम् ॥२
अज्ञानाद् यदि वा मोहात् काली-तारा-मनौ प्रिये ! कृते चक्रादि-गणने शुनी-विष्ठा-कृमिर्भवेत् ॥३
कल्पान्ते च महा-देवि ! निस्तारो विद्यते न च। अस्याः पूजां प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्य-साधन-प्रदाम् ॥४
हठाद्धठाच्च देवेशि ! या या सिद्धिश्च जायते। प्राप्यते तत्क्षणेनैव नात्र कार्या विचारणा ॥५

श्री शिव ने कहा—हे देव-देवेशि ! हम (ब्रह्मा-विष्णु-शिव) और अग्नि तथा काल भी एवं अन्य जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह सब महेश्वरी से ही उत्पन्न हुआ है। कालिका और तारिणी के मन्त्रों की महिमा मैं क्या बताऊँ ! हे प्रिये ! अज्ञान या मोह-वश यदि कोई काली और तारा के मन्त्र-सम्बन्ध में चक्रादि-गणना करता है, तो वह कुत्ते के मल में कीड़े का जन्म पाता है और हे महा-देवि ! कल्प के अन्त में भी उसे मोक्ष नहीं मिलता।

इन देवी की पूजा-विधि कहूँगा, जो तीनों लोकों की सिद्धि-दायिनी हैं। हे देवेशि ! हठ-पूर्वक घोर साधना करने से जो-जो सिद्धि मिलती है, वह सब इस पूजा से क्षण मात्र में मिल जाती है, इसमें सन्देह नहीं ॥२-५॥

सिन्दूर-मण्डलं कृत्वा त्रिकोणं च समालिखेत्। निज-वीजानि तन्मध्ये योजयेत् साधकोत्तमः ॥६
चतुरस्रं लिखेद् देवि ! ततो वज्राष्टकं प्रिये ! अष्ट-दिक्षु यजेत् तां तु न्यास-जालं विधाय च ॥७

सिन्दूर से वृत्त (मण्डल) बनाकर त्रिकोण की रचना करे। उसके मध्य में स्व-वीजों (त्रीं त्रीं त्रीं) को उत्तम साधक लिखे। तब चतुष्कोण बनाकर आठ वज्रों को अंकित कर न्यासों को कर आठ दिशाओं में उनकी पूजा करे ॥६-७॥

अक्षोभ्यश्च ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् । कामाख्या देवता सर्व-सिद्धये विनियोजिता ।।८

कामाख्या मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द अनुष्टुप्, देवता कामाख्या और सर्व-सिद्धि के लिए विनियोग है ।।८।।

कराङ्ग-न्यासकं चैव निज-वीजेन कारयेत् । षड्-दीर्घ-भाजां ध्यायेत्तु कामाख्यामिष्ट-दायिनीम् ।।९

स्व-वीज (त्रीं) में छः दीर्घ स्वर लगाकर (त्रां, त्रीं, त्रूं, त्रैं, त्रौं, त्रः) कराङ्ग-न्यासादि करे । तब अभीष्ट-दायिनी कामाख्या देवी का ध्यान करे—।।९।।

कामाख्या देवी का ध्यान

रक्त-वस्त्रां वरोद्युक्तां सिन्दूर-तिलकान्विताम् । निष्कलङ्कां सुधा-धाम-वदन-कमलोज्ज्वलाम् ।।१०
स्वर्णादि-मणि-माणिक्य-भूषणैर्भूषितां पराम् । नाना-रत्नादि-निर्माण-सिंहासनोपरि - स्थिताम् ।।११
हास्य-वक्त्रां पद्मराग-मणि-कान्तिमनुत्तमाम् । पीनोत्तुङ्ग-कुचां कृष्णां श्रुति-मूल-गतेक्षणाम् ।।१२
कटाक्षैश्च महा-सम्पद्-दायिनीं हर-मोहिनी । सर्वाङ्ग-सुन्दरीं नित्यां विद्याभिः परि-वेष्टिताम् ।।१३
डाकिनी-योगिनी-विद्याधरीभिः परि-शोभिताम् । कामिनीभिर्युतां नाना-गन्धाद्यैः परि-गन्धिताम् ।।१४
ताम्बूलादि-कराभिश्च नायिकाभिर्विराजिताम् । समस्त-सिद्ध-वर्गाणां प्रणतां च प्रतीक्षणाम् ।।१५
त्रिनेत्रां मोहन-करीं पुष्प-चापेषु बिभ्रतीम् । भग-लिङ्ग-समाख्यानां किन्नरीभ्योऽपि नृत्यताम् ।।१६
वाणी-लक्ष्मी-सुधा-वाक्य-प्रति-वाक्य-समुत्सकाम् । अशेष-गुण-सम्पन्नां करुणा - सागरां शिवाम् ।।१७

लाल वस्त्र-धारिणी, द्वि-भुजा, सिन्दूर-तिलक लगाए, निर्मल चन्द्र-वत् उज्ज्वल एवं कमल के समान सुन्दर मुखवाली, स्वर्णादि के बने मणि-माणिक्य-जटित आभूषणों से शोभिता, विविध रत्नों से बने सिंहासन पर बैठी हुई, हँस-मुखी, पद्मराग मणि जैसी आभावाली, पीनोन्नत-पयोधरा, कृष्ण-वर्णा, कान तक फैले बड़े-बड़े नेत्रोंवाली, कटाक्ष मात्र से महदैश्वर्य-दायिनी, शङ्कर-मोहिनी, सर्वाङ्ग-सुन्दरी, नित्या, विद्याओं द्वारा घिरी हुई, डाकिनी-योगिनी-विद्याधरी-समूहों द्वारा शोभायमाना, सुन्दर स्त्रियों से विभूषिता, विविध सुगन्धादि से सुवासित देहवाली, हाथों में ताम्बूलादि लिए नायिकाओं द्वारा सुशोभिता और प्रति-नियत समस्त सिद्ध-समूहों द्वारा वन्दिता, त्रिनेत्रा, सम्मोहन करनेवाली, पुष्प-धनुष-धारिणी, भग-लिङ्ग-समाख्याता एवं किन्नरियों के समान नृत्य-परायणा देवी के अमृत-मय वचनों को सुनने के लिए उत्सुका सरस्वती और लक्ष्मी से युक्ता देवी कामाख्या समस्त गुणों से सम्पन्ना, असीम दया-मयी एवं मङ्गल-रूपिणी हैं ।।१०-१७।।

आवाहयेत् ततो देवीमेवं ध्यात्वा च साधकः । पूजयित्वा यथोक्तेन विधानेन हर - प्रिये ! ।।१८
कुंकुमाद्यै रक्त - पुष्पैः सुगन्धि - कुसुमैस्तथा । जवा-यावक - सिन्दूरैः करवीरैर्विशेषतः ।।१९
करवीरेषु देवेशि ! कामाख्या तिष्ठति स्वयम् । जवायां च तथा विद्धि मालत्यादि - समीपके ।।२०
करवीरस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते । प्रदानात्तु जवायाश्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।२१

उक्त प्रकार ध्यान कर कामाख्या देवी का आवाहन करे । तब हे शिव-प्रिये ! यथा-शक्ति विधि-पूर्वक उनकी पूजा करे । कुंकुम आदि, लाल पुष्पों, सुगन्धित कुसुमों, जवा, यावक, सिन्दूर और विशेष कर करवीर पुष्पों से पूजन करे । हे देवेशि ! करवीर पुष्पों में कामाख्या देवी स्वयं निवास करती हैं । जवा और मालती आदि सुगन्धित पुष्पों को भी वैसा ही समझे । करवीर पुष्प की महिमा कहना सम्भव नहीं है । जवा पुष्प को देने से साधक गणपति-स्वरूप बन जाता है ।।१८-२१

पूजयेदम्बिकां देवीं पञ्च - तत्वेन सर्वदा । पञ्च - तत्त्वं विना पूजामभिचाराय कल्पयेत् ।।२२
पञ्च - तत्त्वेन देव्यास्तु प्रसादो जायते क्षणात् । पञ्चमेन महा - देवि ! शिवो भवति साधकः ।।२३

अम्बिका की पूजा सदैव पञ्च-तत्त्वों से करे । पञ्च-तत्त्वों बिना के पूजा व्यर्थ होती है । पञ्च-तत्त्वों के द्वारा देवी की प्रसन्नता क्षण भर में हो जाती है । हे महा-देवि ! पञ्च-मकारों से साधक शिव-स्वरूप हो जाता है ।।२२-२३।।

पञ्च-तत्त्व-समं नास्ति नास्ति किञ्चित् कलौ युगे । पञ्च-तत्त्वं परं ब्रह्म पञ्च-तत्त्वं परा गतिः ।।२४
पञ्च-तत्त्वं महा-देवि ! पञ्च-तत्त्वं सदा-शिवः । पञ्च-तत्त्वं स्वयं ब्रह्मा पञ्च-तत्त्वं जनार्दनः ।।२५
पञ्च-तत्त्वं भुक्ति- मुक्तीर्महा-योगः प्रकीर्तितः । पञ्च-तत्त्वं विना नान्यत् शाक्तानां सुख-मोक्षयोः ।।२६

कलि-युग में पञ्च-तत्त्वों के समान कुछ भी नहीं है । पञ्च-तत्त्व पर-ब्रह्म-स्वरूप हैं और श्रेष्ठ गति-दायक हैं । हे महा-देवि ! पञ्च-तत्त्व स्वयं सदा-शिव, ब्रह्मा और विष्णु-स्वरूप हैं । पञ्च-तत्त्वों से भोग और मोक्ष दोनों मिलते हैं, अतः उनका साधन 'महा-योग' कहा गया है । पञ्च-तत्त्वों के बिना शाक्तों को सुख-भोग और मोक्ष नहीं मिलता ।।२४-२६।।

पञ्च - तत्त्वेन देवेशि ! महा - पातक - कोटयः । नश्यन्ति तत्क्षणेनैव तूल - राशिमिवानलः ।।२७
यत्रैव पञ्च - तत्त्वानि तत्र देवी वसेद् ध्रुवम् । पञ्च - तत्त्व - विहीने तु विमुखी जगदम्बिका ।।२८

हे देवेशि ! पञ्च-तत्त्वों के प्रभाव से करोड़ों महा-पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि रुई के ढेर को भस्म कर देती है । पञ्च-तत्त्व जहाँ होते हैं, वहीं देवी निश्चय ही निवास करती हैं । पञ्च-तत्त्व से रहित स्थान से जगदम्बिका दूर ही रहती हैं ।।२७-२८।।

मद्येन मोदते स्वर्गे मांसेन मानवाधिपः । मत्स्येन भैरवी - पुत्रो मुद्रया साधुतां व्रजेत् ।।२९
परेण च महा - देवि ! सायुज्यं लभते नरः । भक्ति - युक्तो यजेद् देवीं तदा सर्वं प्रजायते ।।३०

'मद्य' से स्वर्ग का आनन्द मिलता है, 'मांस' से राज्य प्राप्त होता है, 'मत्स्य' से भैरवी-पुत्र की योग्यता मिलती है और 'मुद्रा' से साधुता आती है । परम तत्त्व 'पञ्चम' से, हे महा-देवि ! मनुष्य सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त करता है । भक्ति-पूर्वक देवी का अर्चन करे, तो यह सब लाभ होता है ।।२९-३०।।

स्वयम्भू - कुसुमैः पुष्पैः कुण्ड - गोलोद्भवैः शुभैः । कुंकुमाद्यैरासवेन चार्घ्यं देव्यै निवेदयेत् ।।३१
नानोपहार - नैवेद्यैरन्नादि - पायसैरपि । वस्त्र - भूषादिभिर्देवि ! प्रपूज्यावरणं यजेत् ।।३२

स्वयम्भू-कुसुमों और कुण्ड-गोलोद्भव शुभ-पुष्पों से, कुंकुम आदि से और आसव से देवी को 'अर्घ्यं' निवेदित करे । विविध उपहार, अन्नादि, खीर आदि नैवेद्यों से तथा वस्त्रों एवं आभूषणों आदि से देवी की पूजा कर आवरण-देवताओं का पूजन करे ।।३१-३२

इन्द्रादीन् पूजयेत् तत्र तेषां यन्त्राणि शङ्करि ! पार्श्वयोः कमलां वाणीं पूजयेत् साधकोत्तमः ।।३३
अन्नदा धनदा चैव सुखदा जयदा तथा । रसदा मोहदा देवि ! ऋद्धिदा सिद्धिदाऽपि च ।।३४
वृद्धिदा शुद्धिदा चैव भुक्तिदा मुक्तिदा तथा । मोक्षदा सुखदा चैव ज्ञानदा कान्तिदा तथा ।।३५
एताः पूज्या महा-देव्यः सर्वदा यन्त्र-मध्यतः । डाकिन्याद्यास्तथा पूज्याः सिद्धयो यत्नतः शिवे ! ।।३६

वहीं इन्द्रादि दिक्-पालों और उनके अस्त्रों की पूजा कर हे शङ्करि ! श्रेष्ठ साधक दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा करे । हे देवि ! यन्त्र के मध्य में अन्नदा, धनदा, सुखदा, जयदा, रसदा, मोहदा, ऋद्धिदा, सिद्धिदा, वृद्धिदा, शुद्धिदा, भुक्तिदा, मुक्तिदा, मोक्षदा, सुखदा, ज्ञानदा, कान्तिदा—इन १६ महा-देवियों की सदा पूजा करे । साथ ही हे शिवे ! यत्न-पूर्वक डाकिनी आदि सिद्धियों की उसी प्रकार पूजा करे ।।३३-३६।।

षडङ्गानि ततो देव्याः यजेत् पुष्पाञ्जलीन् क्षिपेत् । यथा-शक्ति जपेन्मन्त्रं शुद्ध-भावेन साधकः ।।३७
जपं समर्प्य वाद्याद्यैस्तोषयेत् पर - देवताम् । पठेत् स्तोत्रं च कवचं प्रणमेद् विधिनाऽमुना ।।३८

तब देवी के षडङ्गों की पूजा कर पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान करे और शुद्ध-भाव से साधक यथा-शक्ति मन्त्र का जप करे । जप समर्पित कर घण्टा-घड़ियाल बजाकर पर-देवता को प्रसन्न करे और स्तोत्र, कवच का पाठ कर विधि-पूर्वक प्रणाम करे ।।३७-३८।।

ततश्च हृदये देवीं संयुज्य शेषिकां प्रति । निर्माल्यं निक्षिपेदैशे त्रिकोणं परि-कल्पयेत् ।।३९
निर्माल्यं साधकैः सार्द्धं गृह्णीयाद् भक्ति-भावतः । विहरेत् पञ्च-तत्त्वेन यथा-विधि स्व-शक्तितः ।।४०

इसके बाद हृदयस्थ देवी को 'शेषिका' के प्रति उन्मुख कर ईशान कोण में त्रिकोण की कल्पना कर उस पर निर्माल्य छोड़े । साधकों के साथ भक्ति-पूर्वक निर्माल्य ग्रहण कर अपनी शक्ति के साथ पञ्च-तत्त्वों से विहार करे ।।३९-४०।।

शक्ति-मूलं साधनं च शक्ति - मूलं जपादिकम् । शक्ति - मूला जपाश्चैव शक्ति - मूलं च जीवनम् ।।४१
ऐहिकं शक्ति - मूलं च पारत्रं शक्ति - मूलकम् । शक्ति - मूलं तपः सर्वं चतुर्वर्गस्तथा प्रिये ! ।।४२

शक्ति ही साधना और जपादि का मूल है । शक्ति ही जीवन का मूल और वही इह-लोक एवं पर-लोक का मूल है। शक्ति ही तप का मूल है और हे प्रिये ! चारों वर्गों–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का भी मूल है ।।४१-४२।।

शक्ति-मूलानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च । अज्ञात्वा पापिनो देवि ! रौरवं यान्ति निश्चितम् ।।४३
तस्मात् सर्व - प्रयत्नेन साधकैश्च शिवाज्ञया । शक्त्युच्छिष्टं पीयते हि नान्यथा यान्ति रौरवम् ।।४४

जड़ और जङ्गम—सभी का मूल शक्ति है । हे देवि ! इस तथ्य को न समझकर पापी लोग निश्चित रूप से भयानक नरक में जाते हैं। इसलिए भगवान् शिव की आज्ञा के अनुसार साधक प्रयत्न करके शक्ति का जूठा द्रव्य पीते हैं अन्यथा रौरव नरक में जाते हैं ।।४३-४४।।

शक्त्यै यद्-दीयते देवि ! तत् तु देवार्पितं भवेत् । सफलं कर्म तत् सर्वं सत्यं सत्यं कुलेश्वरि ! ।। ४५
शक्ति बिना कलौ चक्रं करोति कारयेदपि । स याति नरकं घोरं निस्तारो नहि विद्यते ।।४६

हे देवि ! शक्ति को जो कुछ दिया जाता है, वह देवता को ही अर्पित होता है । जिन उद्देश्यों से वह सब दिया जाता है, हे कुलेश्वरि ! वे सभी सफल होते हैं, यह सर्वथा सत्य है । शक्ति के बिना कलि-युग में जो चक्रार्चन करता या करवाता है, वह घोर नरक में जाता है, उसके मोक्ष का उपाय नहीं है ।।४५-४६।।

एवं तु पूजयेद् देवीं यं यं चोद्दिश्य साधकः । तं तं कामं करे कृत्वा प्रिये ! जयति निश्चितम् ।।४७
पुरश्चरण-काले तु लक्षमेकं जपेत् सुधीः । तद् - दशांशं हुनेदाज्यैः शर्करा - मधु - पायसैः ।।४८
तर्पयेत् तद् - दशांशैश्च जलैश्चन्दन - मिश्रितैः । गन्धाद्यैः साधकाधीशस्तद् - दशैरभिषेचयेत् ।।४९
अभिषेक - दशांशेन भोजयेच्च द्विजोत्तमान् । मिष्ठान्नैः साधकान् देवि ! देवी-भक्तांश्च पञ्चमैः ।।५०
एवं पुरस्क्रियां कृत्वा सिद्धो भवति साधकः । प्रयोगेषु ततो देवि ! योग्यो भवति निश्चितम् ।।५१

हे प्रिये ! जिस-जिस कामना के लिए उक्त प्रकार जो देवी की पूजा करता है, वह उस-उस कामना को हस्तगत कर निश्चय ही विजय प्राप्त करता है । पुरश्चरण-काल में बुद्धिमान् साधक को एक लाख 'जप' करना चाहिए और उसका दशांश 'हवन' घृत, शर्करा, मधु-युक्त खीर द्वारा करना चाहिए । उसका दशांश 'तर्पण' चन्दन-युक्त जल से करना चाहिए । उसका दशांश गन्धादि द्वारा 'अभिषेक' करना चाहिए । 'अभिषेक' का दशांश उत्तम द्विजों को मिष्ठान्नों द्वारा और देवी-भक्तों को पञ्च-तत्त्वों द्वारा भोजन कराना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण की क्रिया कर साधक सिद्ध हो जाता है । हे देवि ! तब वह प्रयोगों के करने में निश्चित रूप से सक्षम हो जाता है ।।४७-५१।।

एतत् पूजादिकं सर्वं कामाख्या - प्रीति-कारकम् । महा-प्रीति-करी पूजा योनि-चक्रे कुलेश्वरि ! ।।५२
योनि - पूजा महा-पूजा तत्समा नहि सिद्धिदा । तत्र देवीं यजेद् धीमान् सैव देवी न चान्यथा ।।५३
आवाहनादि - कर्माणि च तत्र सर्वथा प्रिये ! लेपयेत् तां तु गन्धाद्यैः पूजयेद् विविधेन च ।।५४
महा-प्रीतिर्भवेद् देव्याः सिद्धो भवति तत्क्षणात् । योनि - पूजा-समा पूजा नास्ति ज्ञाने तु मामके ।।५५

हे कुलेश्वरि ! यह सारा पूजनादि कामाख्या को प्रसन्न करता है । 'त्रिकोण-यन्त्र' में की गई पूजा से भगवती अत्यधिक प्रसन्न होती हैं । हे प्रिये ! उसमें आवाहनादि सभी कर्म कर उस पर विविध प्रकार के गन्धादि का लेप करे। इससे देवी को अत्यन्त प्रसन्नता होती है और साधक शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है । मेरे ज्ञान में 'त्रिकोण'-पूजा के समान अन्य कोई पूजा नहीं है ।।५२-५५।।

चुम्बनाल्लेहनाद् योनेः कल्प - वृक्षमतिक्रमेत् । दर्शनात् साधकाधीशः स्पर्शनात् सर्व - मोहनः ।।५६
लिङ्ग-योनि-समाख्यानं कामाख्या-प्रीति - वर्द्धनम् । तदेव जीवनं तस्या गिरिजे ! बहु किं वचः ।।५७
तस्मात् सर्व - प्रयत्नेन योनि -पूजां समाचरेत् । पर - स्त्री - योनिमासाद्य विशेषेण यजेत् सुधीः ।।५८
वेश्या - योनिः परा देवि ! साधनं तत्र कारयेत् । त्रि-रात्रादेव सिध्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ।।५९
ऋतु-युक्तं लता-मध्ये साधयेद् विधि - वन्मुदा । अचिरात् सिद्धिमाप्नोति देवानामपि दुर्लभाम् ।।६०
सारात् सार-तरं देवि ! योनि-साधनमीरितम् । विना तत्-साधनं देवि ! महा - शापः प्रजायते ।।६१
योनि - निन्दां घृणां देवि ! यः करोति नराधमः । अचिराद् रौरवं याति देवि ! सत्यं शिवाज्ञया ।।६२
योनि-मध्ये वसेद् देवी योगिन्यश्चिकुरे स्थिताः । त्रिकोणा च त्रयो देवाः शिव-विष्णु-पितामहाः ।।६३
तस्मान्न निन्दयेद् योनिं यदीच्छेदात्मनो हितम् । योनि-निन्दां प्रकुर्वाणः स - वंशेन विनश्यति ।।६४
योनि-स्तुति-परो देवि ! शिवः स्यात् तत्क्षणेन च । शैवानां वैष्णवानां च शाक्तानां च विशेषतः ।।६५
किं ब्रूमो योनि-माहात्म्यं योनि-पूजा-फलानि च, चांचल्याद् गदितं किंचित् क्षंतव्यं काम-रूपिणि ।।६६

श्लोक ५६ से ६६ तक के श्लोकों का अर्थ स्पष्ट है किन्तु उसके अनुसार पूजन करने का अधिकार सबको नहीं है । जो चाहें, वे उसका भावार्थ अपने गुरुदेव से समझ सकते हैं ।।५६-६६।।

।। इति श्रीकामाख्या-तन्त्रे देवीश्वर-सम्वादे तृतीयः पटलः ।।

चतुर्थः पटलः

कामाख्या-मन्त्रः (कामाख्या देवी का मन्त्र)

वर - मन्त्रं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु पार्वति ! यस्य प्रसाद - मात्रेण ब्रह्म - विष्णु - शिवा अपि ।।१
इन्द्राद्याः देवताः सर्वा भवन्ति कामना - युताः । गन्धर्वाः किन्नरा देवि ! तथा विद्याधरादयः ।।२
यत्-प्रसादं समागत्य स्वकीय-विषयान्विताः । योगिनो डाकिनी विद्या भैरवी नायिकाऽऽदिकाः ।।३
कामाख्या-मन्त्रमासाद्य भजन्ति योग्यतां पराम् । स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये ये सिद्धयन्ति साधकाः ।।४

हे पार्वति ! श्रेष्ठ मन्त्र बताऊँगा, जिसके प्रसाद से ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी और इन्द्रादि सभी देवता कामना-पूर्ण होते हैं । हे देवि ! गन्धर्व, किन्नर और विद्याधर आदि तथा योगिनी, डाकिनी, भैरवी, नायिका आदि विद्याएँ जिसके प्रसाद से आकर अपने विषय को पूर्ण करती हैं । उस कामाख्या मन्त्र को पाकर स्वर्ग, मृत्यु-लोक और पाताल

में जो-जो सिद्ध साधक हैं, वे श्रेष्ठ योग्यता को प्राप्त करते हैं। उसे आदर सहित सुनो ॥१-४॥

निज - वीज - त्रयं देवि ! क्रोध-द्वयमतः परम् । वधू - वीज-त्रयं चैव कामाख्ये च पुनर्वदेत् ॥५
प्रसीदेति पदं चैव पूर्व - वीजानि कल्पयेत् । ठ - द्वयान्ते मनुः प्रोक्तः सर्व-तन्त्रेषु दुर्लभः ॥६

[त्रीं त्रीं त्रीं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं कामाख्ये ! प्रसीद स्त्रीं स्त्रीं हूं हूँ त्रीं त्रीं त्रीं स्वाहा]

हे देवि ! अपने तीन वीज (त्रीं त्रीं त्रीं), उसके बाद दो 'क्रोध - वीज' (हूं हूं) और तीन 'वधू-वीज' (स्त्रीं स्त्रीं स्त्री), फिर 'कामाख्ये' कहना चाहिए, तब 'प्रसीद' शब्द और पूर्वोक्त वीजों की पुनः कल्पना करनी चाहिए। अन्त में 'दो ठ' (स्वाहा)—यह सभी तन्त्रों में दुर्लभ मन्त्र कहा गया है ॥५-६॥

प्रणवाद्या महा-देवि ! त्रैलोक्ये चाति - दुर्लभा । चतुर्वर्ग - प्रदा साक्षान्महा - पातक - नाशिनी ॥७
स्मरणादेव मन्त्रस्य सर्वे विघ्नाः समाकुलाः । नश्यन्ति दहने दीप्ते पतङ्गा इव पार्वति ! ॥८

हे महा-देवि ! उक्त मन्त्र के आदि में 'प्रणव' (ॐ) लगाने से यह चारों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) देनेवाली, महा-पापों को नष्ट करनेवाली साक्षात् देवी-स्वरूप बन जाता है। हे पार्वति ! इस मन्त्र का स्मरण करते ही सभी विघ्न उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे अग्नि में पतङ्गे जलकर भस्म हो जाते हैं ॥७-८॥

मन्त्र - ग्रहण - मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । भुक्ति - मुक्ती करे तस्य सर्वेषां प्रियतां व्रजेत् ॥९
आवृणोति स्वयं लक्ष्मीर्वदने गीः सदा वसेत् । पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च भवन्ति चिर - जीविनः ॥१०

मन्त्र लेते ही मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। भोग और मोक्ष उसके हाथ में आ जाते हैं और वह सबका प्रिय बन जाता है। स्वयं लक्ष्मी उसे वरण कर लेती हैं और सरस्वती उसके मुख में निवास करती हैं तथा उसके पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र चिरञ्जीवी होते हैं ॥९-१०॥

पृथिव्यां सर्व - पीठेषु कामाख्यादिषु शङ्करि ! लिपिश्चलति तस्यैव नात्र कार्या विचारणा ॥११
तस्य नाम च संस्मृत्य प्रणमन्ति सदा जनाः । नाम श्रुत्वा वारमेकं पलायन्ते च हिंस्रकाः ॥१२

हे शङ्करि ! पृथ्वी पर कामाख्या आदि सभी पीठों में उसी का लेख प्रचलित होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उसके नाम का स्मरण कर सुयोग्य लोग प्रणाम करते हैं और उस नाम को सुनते ही हिंसक प्राणी भाग खड़े होते हैं ॥११-१२॥

यावत्यः सिद्धयः सन्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले । साधकानां परिचर्यां कुर्वन्ति नात्र संशयः ॥१३
तं दृष्ट्वा साधकेन्द्रं च वादी स्खलति दर्शनात् । सभायां कोटि-सूर्याभं पश्यन्ति सर्व - सज्जनाः ॥१४

स्वर्ग, मृत्यु-लोक और पाताल में जितनी सिद्धियाँ हैं, वे सभी साधकों की सेवा करती हैं, इसमें सन्देह नहीं। उस साधकेन्द्र को देखकर शास्त्रार्थ करनेवाला कुण्ठित

हो जाता है और सभा में सभी सज्जन उसे करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी देखते हैं ।।१३-१४।।

जिह्वा-कोटि-सहस्रैस्तु वक्त्र-कोटि-शतैरपि । वर्णितुं नैव शक्नोमि मन्त्रमेतन्महेश्वरि ! ।।१५
न्यास-पूजादिकं सर्वं पूर्वमुक्तं वरानने ! पुरश्चर्या-विधौ किन्तु षट्-सहस्रं मनुं जपेत् ।।१६
यथा-विधि षट्-शतानि होमादींश्च समाचरेत् । सिद्धो भवति मन्त्रज्ञः प्रयोगेषु ततः क्षमः ।।१७

हे महेश्वरि ! करोड़ों हजार जीभों से और करोड़ों सैकड़े मुखों से भी इस मन्त्र की महिमा का वर्णन मैं नहीं कर सकता । हे वरानने ! इसके न्यास, पूजन आदि सभी बातें पहले कही जा चुकी हैं किन्तु इसके पुरश्चरण में मन्त्र का जप छः हजार करना चाहिए । यथा-विधि छः सौ होमादि करना चाहिए । इससे साधक को मन्त्र सिद्ध होता है और तब वह इसका प्रयोग करने में समर्थ होता है ।।१५-१७।।

ध्यानं शृणु महा-देव्या धन-धान्य-सुत-प्रदम् । दारिद्रच-हननं देवि ! क्षणेनैव न चान्यथा ।।१८

हे देवि ! महा-देवी का ध्यान सुनो, जो धन-धान्य और पुत्र-दायक है तथा क्षण भर में ही दरिद्रता का नाश कर देता है, इसमें सन्देह नहीं— ।।१८।।

कामाख्याः ध्यानम् (कामाख्या देवी का ध्यान)

अति-सुललित-वेशां हास्य-वक्त्रां त्रिनेत्राम्, जित-जलद-सुकान्ति पट्ट-वस्त्र-प्रकाशाम् ।
अभय-वर-कराढ्यां रत्न-भूषाति-भव्याम्, सुर-तरु-तल-पीठे रत्न-सिंहासनस्थाम् ।।१९
हरि-हर-विधि-वन्द्यां बुद्धि-वृद्धि-स्वरूपाम्, मदन-शर-समाक्तां कामिनीं काम-दात्रीम् ।
निखिल-जन-विलासोल्लास-रूपां भवानीम्, कलि-कलुष-निहन्त्रीं योनि-रूपां भजामि ।।२०

मैं योनि-रूपा भवानी का भजन करता हूँ, जो कलि-काल के पापों का नाश करती हैं और समस्त लोगों को भोग-विलास के उल्लास से पूर्ण कर देती हैं । वे अत्यन्त सुन्दर केशवाली, हँसमुखी हैं, त्रिनेत्रा हैं और उनकी सुन्दर कान्ति के आगे मेघों की छवि भी फीकी पड़ जाती है । रेशमी वस्त्रों से वे प्रकाशमाना हैं । उनके हाथ अभय और वर-मुद्राओं से युक्त हैं । रत्न-जटित आभूषणों से वे बड़ी भव्य हैं । देव-वृक्ष के नीचे पीठ पर रत्न-जटित सिंहासन पर वे विराजमाना हैं । ब्रह्मा-विष्णु-महेश द्वारा वन्दिता वे बुद्धि-वृद्धि-स्वरूपा हैं । कामदेव के मनो-मोहक वाण के समान वे अत्यन्त कमनीया एवं सभी की कामनाओं को पूर्ण करनेवाली हैं ।।१९-२०।।

गुह्याद्-गुह्यतरं देवि ! ध्यानं दारिद्रच-नाशकम् । गोपितं सर्व-तन्त्रेषु तव भावात् प्रकाशितम् ।।२१

हे देवि ! यह ध्यान गुप्त से भी गुप्त है और दरिद्रता का नाशक है । सभी तन्त्रों में यह गुप्त है । तुम्हारे प्रेम से मैंने प्रकट किया है ।।२१।।

साधन-पद्धतिः (साधना की पद्धति)

स्वयम्भू - कुसुमेनैव तिलकं परिकल्प्य च । तूलिकायां महा - देवि ! कुल - शक्तिं समाविशेत् ॥२२
कर्पूरित - मुखः स्वादु साधकश्चुम्बयन्मुदा । तस्याधरो यथा भृङ्गो नीरज - व्याकुलः प्रिये ! ॥२३
दन्त - क्षति - वितानां च परमं तत्र कारयेत् । आलिङ्गयेन्मदोन्मत्तः सुदृढं कुच - मर्दनम् ॥२४
नखाघातैर्नितम्बे च रमयेद् रति - पण्डितः । पुनः पुनश्चुम्बनं च योनौ कुर्यात् कुलेश्वरि ! ॥२५
शुक्रं तु स्तम्भयेद् वीरो योनौ लिङ्गं प्रवेशयेत् । आघातैस्तोषयेत् तां तु सन्धान - भेदतः प्रिये ! ॥२६
ततो लिङ्गे स्थिते योनौ आज्ञां तस्याः प्रगृह्य च । अष्टोत्तर-शतं मन्त्रं जपेद् होमादि-कांक्षया ॥२७
दिन - त्रयं महा - धीरः प्रजपेद् ध्यान - तत्परः । प्राप्यते मानसं वस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥२८
ऋतु - युक्त - लतां देवि ! निवेश्य तूलिकोपरि । करवीर-प्रसूनं च तस्या लिङ्गोपरि न्यसेत् ॥२९
तद् वीक्ष्य देव-देवेशि ! जपेच्चाष्ट-सहस्रकम् । दिन-त्रयं ततो देव्याः प्रीतिः स्यादचला प्रिये ! ॥३०
धनं विन्दति तस्यैव लक्ष - संख्यं न संशयः । आनन्दं वर्द्धयेन्नित्यं साधकस्य महात्मनः ॥३१
अष्टोत्तर-शतं योनिं संचुम्ब्य पूज्य सज्जनः । पुनर्लिङ्गे स्थिते योनौ जपेच्चाष्ट - सहस्रकम् ॥३२
कांक्षा-पञ्च-गुणं वित्तं प्राप्यते सर्वदा सुखी । नित्यं तस्य महेशानि ! नायिका - सङ्गमो भवेत् ॥३३
वेश्या-लतां समानीय कुल - चक्रं विधाय च । तस्या योनौ यजेद् देवीं हृष्ट - चित्तेन साधकः ॥३४
भग-लिङ्ग-समाख्यानं सु - स्वरेण समुच्चरेत् । योनिं वीक्ष्य जपेन्मन्त्रं सप्त - रात्रमतन्द्रितः ॥३५
प्रत्यहं सततं कृत्वा सोऽपि सिद्धीश्वरः कलौ । आज्ञां गृह्णाति धनदस्तस्य देवि ! न संशयः ॥३६
सद्-गुरोः स्मरणं कृत्वा योनेश्च साधनं यदि । तदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्यमेव हि ॥३७

श्लोक २२ से ३७ तक उक्त मन्त्र की साधना का वर्णन है, जो सर्व-साधारण के लिए नहीं है । जो चाहें, वे उसे अपने गुरुदेव से समझ सकते हैं ॥२२-३७॥

॥ इति श्रीकामाख्या-तन्त्रे देवीश्वर-संवादे चतुर्थः पटलः ॥

पञ्चमः पटलः

श्रीगुरु-तत्त्वम् (श्रीगुरु का रहस्य)

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

गुरु - तत्त्वं महा - देव ! विशेषेण वद प्रभो ! दुर्वहा गुरुता यातुं सम्भवेन्मानुषे कथम् ॥१
तत्रैव सद्-गुरुः को वा श्रेष्ठः को वा वद प्रभो ! दूरीकुरु महा - देव ! संशयो मे महोत्कटम् ॥२

श्री देवी बोलीं—हे प्रभो महा-देव ! गुरु-तत्त्व को विशेष रूप से बताइए । हे देव ! गुरुत्व को वहन करना बड़ा कठिन है । मनुष्य में वह कैसे आता है ? वहीं सद्-गुरु या श्रेष्ठ गुरु कौन है, यह भी हे प्रभो ! बताइए । हे महा-देव ! मेरे इस घोर सन्देह को दूर करिए ॥१-२॥

इति देव्याः वचं श्रुत्वा प्रोवाच शङ्करः प्रभुः । श्रृणु सार-तरं ज्ञानं साधूनां हित-कारणम् ॥३
गुरुः सदा-शिवः प्रोक्त आदि-नाथ स उच्यते । महा-काल्या युतो देवः सच्चिदानन्द-विग्रहः ॥४

देवी की बात सुनकर भगवान् शङ्कर ने कहा—सज्जनों के लिए हितकारक श्रेष्ठ सार-पूर्ण ज्ञान सुनो । सदा-शिव ही गुरु कहे गए हैं । वे आदि-नाथ कहलाते हैं । महा-काली से युक्त वे देव सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं ।।३-४।।

सनातनः परं - ब्रह्म श्रीधर्मस्त्रिगुणः प्रभुः । त्वत् - प्रसादान्महा - देवि ! शिवोऽहमजरामरः ।।५
अतएव गुरुर्नैव मनुजः किन्तु कल्पना । दीक्षायै साधकानां च वृक्षादौ पूजनं यथा ।।६

हे महा-माये ! उन्हीं के प्रसाद से मैं शिव अजर और अमर हूँ । वे आदि-नाथ सनातन पर-ब्रह्म हैं, वे श्री धर्म और तीनों गुणों के प्रभु हैं । अतः मनुष्य 'गुरु' नहीं हैं, किन्तु उनकी भावना मात्र हैं। जैसे साधकों की दीक्षा में वृक्षादि में पूजन किया जाता है ।।५-६।।

अतएव महेशानि ! कुतो हि मानुषो गुरुः ? मानुषी गुरुता देवि ! कल्पना न तु तथ्यता ।।७
मन्त्र-दाता शिरः-पद्मे यद् ध्यानं कुरुते गुरोः । तद् ध्यानं शिष्य-शिरसि चोपदिष्टं न चान्यथा ।।८

अतएव हे महेश्वरि ! मनुष्य गुरु कहाँ है ? मनुष्य की 'गुरुता' तो भावना ही है । हे देवि ! उसमें वास्तविकता नहीं है । मन्त्र देनेवाला अपने शिरस्थ कमल में गुरु का जो ध्यान करता है. उसी ध्यान को वह शिष्य के सिर में उपदिष्ट करता है । अन्य कोई बात नहीं है ।।७-८।।

अखण्ड - मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।९
प्रसिद्धमिति यद् देवि ! तत्-पदं दर्शको नरः । अतएव नरे देवि ! गुरुता कल्पनैव हि ।।१०

अखण्ड-मण्डलाकार चराचर जगत् जिसके द्वारा व्याप्त है, उस सच्चिदानन्द ब्रह्म के पद को जो दिखाता है, उस श्रीगुरु को नमस्कार है—यह जो वन्दना प्रसिद्ध है, उससे स्पष्ट है कि सच्चिदानन्द ब्रह्म-पद को दिखानेवाला मनुष्य गुरु है, अतः हे देवि ! मनुष्य में 'गुरुता' की कल्पना ही की जाती है ।।९-१०।।

न तु गुरुः स्वयं च मूर्खता चोभयोरपि । अयं गुरुरिति ज्ञानं शिष्योऽयं खलु मे सदा ।।११
दर्शका पटलस्यैव न स्वयं मानुषो गुरुः । मोक्षो न जायते सत्यं मानुषे गुरु-भावनात् ।।१२

न तो गुरु और न स्वयं शिष्य—दोनों की यह मूर्खता ही है कि सदा वे यही निश्चयपूर्वक समझते हैं कि यह मनुष्य 'गुरु' है और यह 'शिष्य' । वस्तुतः मनुष्य मात्र दिखानेवाला है, स्वयं 'गुरु' नहीं है । इस प्रकार मनुष्य में गुरु की भावना रखने से मोक्ष नहीं मिलता, यह सत्य है ।।११-१२।।

यथा भोक्तरि भोज्यं हि स्वर्णादि - पात्रकेन च । दीयते च यथा देवि ! तस्मै सर्वं समर्पणम् ।।१३
यदि निन्द्यं च तत् पात्रं भग्नं वापि महेश्वरि ! तदा त्यजेत् तु तत्-पात्रमन्य-पात्रेण तोषयेत् ।।१४

अतो हि मनुजं लुब्धं दुष्टं शिष्योऽपि सन्त्यजेत् । असम्मतस्तु लोकैर्यस्तत्र रुष्टः सदा-शिवः ।।१५

हे देवि ! जैसे खानेवाले को भोजन स्वर्णादि-पात्र में दिया जाता है, वैसे ही मन्त्र द्वारा सब कुछ ब्रह्म को समर्पित किया जाता है। हे कुलेश्वरि ! यदि उस पात्र को निन्दनीय या टूटा हुआ पाया जाता है, तो उसे त्याग कर अन्य पात्र में भोजन देकर खानेवाले को सन्तुष्ट किया जाता है। उसी प्रकार लालची, दुष्ट मनुष्य शिष्य को पाकर उसे भी छोड़ देना चाहिए क्योंकि संसार में जो निन्दनीय है, उसे मन्त्र देने से सदा-शिव रुष्ट होते हैं ।।१३-१५।।

राजस्वं दीयते राज्ञे प्रजाभिर्मण्डलादिभिः । तथा तथैव तस्मै तु शिष्य - दानं समर्पणम् ।।१६
अत्रैव ग्राहका हिंस्रा मण्डलाद्याः स्मृता यदि । अन्य - द्वारेण दातव्यं तांस्तान् सन्त्यज्य सर्वदा ।।१७

राजा को जैसे राजत्व और प्रजाओं को मण्डल - समूह का दान जिस प्रकार कल्याणकारी होता है, उसी प्रकार शिष्य को मन्त्र-दान श्रेयस्कर होता है। मण्डलादि-दान के क्षेत्र में जैसे हिंस्र दान-ग्रहीता को छोड़कर अन्य उपयुक्त पात्र को ही दान दिया जाता है, उसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में—ज्ञान देते समय भी उसी नियम को माना जाता है ।।१६-१७।।

सर्वेषां भुवने सत्यं ज्ञानाय गुरु - सेवनम् । ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् तस्मात् ज्ञानं परात्परम् ।।१८
अतो यो ज्ञान - दाने हि न क्षमस्तं त्यजेद् गुरुम् । अन्नाकांक्षी निरन्नं च यथा सन्त्यजति प्रिये !।।१९

सभी लोकों में सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही गुरु की सेवा की जाती है। ज्ञान से मोक्ष मिलता है, अतः ज्ञान ही सर्व-श्रेष्ठ है। इसीलिए जो ज्ञान देता है, उसी का आश्रय गुरु-रूप में लिया जाता है। अन्न का इच्छुक जैसे अन्न-हीन को छोड़ देता है, वैसे ही ज्ञानेच्छु ज्ञान-हीन का त्याग करता है ।।१८-१९।।

ज्ञान - त्रयं यदा भाति स गुरुः शिव एव हि । अज्ञानिनं वर्जयित्वा शरणं ज्ञानिनो व्रजेत् ।।२०
ज्ञानाद्, धर्मो भवेन्नित्यं ज्ञानादर्थो हि पार्वति ! ज्ञानात् काममवाप्नोति ज्ञानान्मोक्षो हि निर्मलः ।।२१

जिस व्यक्ति में ज्ञान-त्रय का प्रकाश होता है, वही गुरु है, शिव-स्वरूप ही है। अज्ञानी को छोड़कर ज्ञानियों की ही शरण लेनी चाहिए। हे पार्वति ! ज्ञान से ही सदा 'धर्म' होता है, ज्ञान से 'अर्थ' मिलता है, ज्ञान से 'काम' की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही निर्मल 'मोक्ष' मिलता है ।।२०-२१।।

ज्ञानं हि परमं वस्तु ज्ञानात् सार - तरं नहि । ज्ञानाय भजते देवं ज्ञानं हि तपसः फलम् ।।२२
मधु - लुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् । ज्ञान - लुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं ब्रजेत् ।।२३

ज्ञान ही श्रेष्ठ वस्तु है। ज्ञान से श्रेष्ठ कुछ नहीं है। ज्ञान के लिए ही देवता की उपासना की जाती है। ज्ञान ही तपस्या का फल है। जैसे मधु की इच्छा से भौंरा एक

फूल से दूसरे फूल पर जाता है, वैसे ही ज्ञान के इच्छुक शिष्य को एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना चाहिए ।।२२-२३।।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य - वित्तापहारकः । दुर्लभः सद् - गुरुर्देवि ! शिष्य - सन्ताप-हारकः ।।२४
अज्ञान - तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन - शलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।२५

शिष्य का धन लेनेवाले गुरु बहुत हैं किन्तु हे देवि ! शिष्य के दुःख को दूर करनेवाले सद्-गुरु दुर्लभ हैं । ज्ञान-रूपी अञ्जन को सलाई से अज्ञान-रूपी अन्धेपन को दूर कर जो आँखें खोल देते हैं अर्थात् ज्ञान प्रदान करते हैं, उन श्रीगुरु:व को नमस्कार है ।।२४-२५।।

इति मत्वा साधकेन्द्रो गुरुतां कल्पयेत् सदा । ज्ञानिन्येव शिष्य-भक्त्या केवलं कल्पना शिवे ! ।।२६
शान्तो दान्तः कुलीनश्च शुद्धान्तःकरणः सदा । पञ्च-तत्त्वार्चको यस्तु सद्-गुरुः स प्रकीर्तितः ।।२७

उक्त बात को समझकर ही साधक को सदा 'गुरुता' की भावना करनी चाहिए । हे शिव ! ज्ञानी लोगों में ही भक्त-शिष्यों की 'गुरुत्व' की कल्पना होती है। शान्त, संयमी, कुलीन, सदा शुद्ध अन्तःकरण और पञ्च-तत्त्वों से अर्चन करनेवाला जो ज्ञानी है, वही 'सद्-गुरु' कहा गया है ।।२६-२७।।

सिद्धोऽसाविति चेत् ख्यातो बहुभिः शिष्य-पालकः । चमत्कारी दैव-शक्त्या सद्-गुरुः कथितः प्रिये !२८
अश्रुतं सम्मतं वाक्यं व्यक्ति साधु मनोहरम् । तन्त्रं मन्त्रं समं वक्ति य एव सद्-गुरुश्च सः ।।२९

बहुत से शिष्यों को आश्रय देने से 'वह सिद्ध हैं'—ऐसी ख्याति प्राप्त करते हैं । हे प्रिये ! दैवी शक्ति से चमत्कार-पूर्ण 'सद्-गुरु' कहलाते हैं । जो मनोहर, हितकारी, अभूतपूर्व, तर्क-सम्मत बातें करते हैं और तन्त्र-मन्त्र से युक्त कथन करते हैं, वे ही 'सद्-गुरु' हैं ।।२८-२९।।

सदा यः शिष्य - बोधेन हिताय च समाकुलः । निग्रहानुग्रहे शक्तः सद्-गुरुर्गीयते बुधैः ।।३०
परमार्थे सदा दृष्टिः परमार्थं प्रकीर्तितम् । गुरु-पादाम्बुजे भक्तिर्यस्यैव सद्-गुरुः स्मृतः ।।३१

जो सदैव शिष्य के उद्बोधन और कल्याण के लिए उत्सुक रहते हैं तथा अनुशासन करने में एवं कृपा करने में समर्थ होते हैं, वे ही 'सद्-गुरु' हैं । जिनकी दृष्टि सदा परमार्थ पर रहती है, गुरु-चरण-कमलों में जो सदैव आसक्त रहते हैं, वे ही 'सद्-गुरु' माने जाते हैं ।।३०-३१।।

इत्यादि गुण-सम्पत्ति दृष्ट्वा देवि ! गुरुं व्रजेत् । त्यक्त्वाऽक्षमं गुरुं शिष्यो नात्र काल-विचारणा ।।३२
केवलं शिष्य - सम्पत्तिर्ग्राहको बहु-याचकः । व्यङ्गितश्च समक्षे यो लोकैर्निन्द्यो गुरुर्यतः ।।३३

हे देवि ! असमर्थ मानव गुरु को छोड़कर, उक्त गुणों को देखकर शिष्य को योग्य 'गुरु' के पास जाना चाहिए, इसमें कोई शङ्का की बात नहीं है । केवल शिष्य की सम्पत्ति

के ग्राहक और माँगनेवाले बहुत से गुरु होते हैं, जो लोगों द्वारा व्यङ्ग से गुरु कहे जाते हैं तथा निन्दनीय होते हैं ।।३२-३३।।

कायेन मनसा वाचा शिष्यो भक्ति-युतं यदि । दृष्ट्वाऽनुमोदनं नास्ति यस्य तद्-वस्तु - कामतः ।।३४
कर्मणा गर्हितेनैव हन्ति शिष्य- धनादिकम् । शिष्य-हितैषिजं लोकं वर्जयेत् तं नराधमम् ।।३५

शरीर, मन और वाणी से यदि कोई शिष्य भक्ति-युक्त है, तो उसे देखकर जो गुरु उससे किसी वस्तु की कामना करता है और उसे सान्त्वना नहीं देता, तो वह निन्दित होता है । जो गर्हित कर्मों द्वारा शिष्य के धन आदि का नाश करता है और शिष्य के हितैषी लोगों की उपेक्षा करता है, वह गुरु नहीं--नीच मनुष्य है ।।३४-३५।।

महा-विद्यां समादाय वीराचारं ददाति न । स याति नरकं घोरं शिष्योऽपि पतितो ध्रुवम् ।।३६
पशु-भावे स्थितो यो हि कालिका - तारिणी-मनुम् । दत्वाऽऽचारं वदेन्नैव नरकान्न निवर्तते ।।३७

जो गुरु शिष्य को 'महा-विद्या' का मन्त्र बताकर 'वीराचार' की शिक्षा नहीं देता, वह घोर नरक में जाता है और शिष्य का भी पतन होता है, यह सर्वथा निश्चित है । पशु-भाव में रहते हुए जो गुरु भगवती काली और भगवती तारा के मन्त्र की दीक्षा देकर उनका 'आचार' नहीं बताता, वह नरक से कभी छुटकारा नहीं पाता ।।३६-३७।।

तस्मात् पशु - गुरुस्त्यक्तः साधकैः सर्वदा प्रिये ! पशोर्दीक्षाऽधमा प्रोक्ता चतुर्वर्ग-विघातिनी ।।३८
यदि दैवात् पशोर्दीक्षां लभते शक्तिमान् नरः । कौलात् तु कौलिकीं प्रार्थ्य तन्मनुं पुनरालभेत् ।।३९

इसलिए हे प्रिये ! साधकों को 'पशु-गुरु' का सदा त्याग करना चाहिए क्योंकि पशु-दीक्षा अधम कही गई है, जो चारों वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की विशेष रूप से बाधक है। संयोग से यदि पशु-दीक्षा कोई शक्ति-उपासक पा जाय, तो उसे किसी कौल साधक से प्रार्थना कर उस मन्त्र को दीक्षा पुनः लेनी चाहिए ।।३८-३९।।

तदा विद्या प्रसन्ना स्यात् फलदा जननी सदा । अन्यथा विमुखी देवी कुतस्तस्यैव सद्-गतिः ।।४०
पूर्वोक्त-दोष-युक्तश्च दिव्यो वा वीर एव वा । तयोरपि न कर्त्तव्या शिष्येण गुरु-भावना ।।४१
किन्तु भाव्यं हितैषित्वं गुरुता-कल्पनां त्यजेत् । दिव्ये वीर-वरे वापि न दोषोऽत्र शिवाज्ञया ।।४२

तब (कौल साधक से पुनः दीक्षा लेने पर) वह विद्या (मन्त्र) मां के समान अभीष्ट फल-दायिनी हो जाती है । अन्यथा देवी साधक से विमुख रहती हैं, जिससे साधक की सद्-गति नहीं होती । पूर्वोक्त दोष-युक्त चाहे कोई दिव्य साधक हो, या वीर साधक, उन दोनों ही के प्रति शिष्य को गुरु-भावना नहीं रखनी चाहिए । केवल उन्हें अपना हितैषी समझना चाहिए, गुरु मानना छोड़ देना चाहिए । ऐसा करने से कोई दोष नहीं होता । भगवान् शिव का ऐसा ही आदेश है ।।४०-४२।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

दिव्यतो वीरतो देव ! पशुतः किं विशेषतः । वद मे परमेशान ! श्रोतुं मे चित्तमुत्सुकम् ।।४३

श्री देवी बोलीं—हे परमेशान ! बताइए कि 'दिव्य', 'वीर' और 'पशु'—इन साधकों में क्या विशेषता है ? यह सुनने को मेरा मन उत्सुक है ।।४३

।। श्रीशिव उवाच ।।

शृणु देवि, जगद्-वन्द्ये ! यत्-पृष्टं तत्त्वमुत्तमम् । दिव्यः सर्व-मनोहारी मित-वादी स्थिरासनः ।।४४
गम्भीरः शिष्ट - वक्ता च सभाव-ध्यान-तत्परः । गुरु-पादाम्बुजे भीरुः सर्वत्र भय-वर्जितः ।।४५
सर्व - दर्शी सर्व - वक्ता सर्व - दुष्ट - निवारकः । सर्व-गुणान्वितो दिव्यः सोऽहं किं बहु-वाक्यतः ।।४६

श्री शिव ने कहा—हे विश्व-वन्दनीये देवि ! तुमने जो श्रेष्ठ सार की बात पूछी है, उसे सुनो । 'दिव्य' साधक सबके लिए मनोहर, अल्प-भाषी और स्थिर रहनेवाला होता है । वह गम्भीर, शिष्टता से बात करनेवाला, भावुक, ध्यान-तत्पर, गुरु-चरण-कमलों को छोड़कर अन्य सबसे निर्भय, सब कुछ देखनेवाला, सब कुछ बतानेवाला, सभी प्रकार के दुष्टों को निवारण करनेवाला, सर्व-गुण-सम्पन्न और अधिक क्या कहूँ, साक्षात् मेरे समान ही तेजस्वी होता है ।।४४-४६

निर्भयोऽभयदो वीरो गुरु - भक्ति - परायणः । वाचालो बल - वान् शुद्धः पञ्च-तत्त्वे सदा रतिः ।।४७
महोत्साहो महा - बुद्धिर्महा - साहसिकोऽपि च । महाशयः सदा देवि ! साधूनां पालने रतः ।।४८
तत्त्व-मयः सदा वीरो विनयेन महोत्सुकः । एवं बहु - गुणैर्युक्तो वीरो रुद्रः स्वयं प्रिये ! ।।४९

हे देवि ! 'वीर' साधक भय-हीन, अभय-दाता, गुरु-भक्त, वाक्-पटु, शक्ति-शाली, सच्चरित्र, पञ्च-तत्त्व-प्रेमी, अति-उत्साही, अत्यन्त बुद्धि-मान्, साहसी, महा-मना और सज्जनों का सदा पालन करनेवाला होता है । तत्त्वों से युक्त 'वीर-साधक' सदा नम्रता दिखाने को अति उत्सुक रहता है । हे प्रिये ! इस प्रकार बहुत से गुणों से सम्पन्न 'वीर' साधक रुद्र के ही समान सर्व-समर्थ होता है ।।४७-४९

पशून् शृणु महा-देवि ! सर्व-देव-बहिष्कृतान् । अधमान् पाप-चित्तांश्च पञ्च-तत्त्व-विनिन्दकान् ।।५०
केचिच्छागोपमा देवि ! केचिन्मेषोपमा इव । केचित् खरोपमा भ्रष्टाः केचिच्च शूकरोपमाः ।।५१
इत्याद्याः पशवो देवि ! ज्ञेया दुष्टा नराधमाः । एषां देव्यार्चनं सिद्धिर्गमनं वा कुतो भवेत् ।।५२
अतो हि पशवश्छेद्या भेद्याः खाद्याश्च वीरकैः । वर्जिताः सर्वथा भद्रे ! परमार्थ-बहिष्कृताः ।।५३

हे महा-देवि ! सभी देवों द्वारा बहिष्कृत पशुओं के सम्बन्ध में सुनो । पञ्च-तत्त्वों की निन्दा करनेवाले, नीच, पाप-युक्त मनवाले पशु साधकों में कुछ तो छाग (बकरे) के समान कामुक, कुछ मेष (भेंड़े) के समान क्रोधी, कुछ गधे के समान मूर्ख और कुछ सुअर के समान दुराचारी होते हैं । हें देवि ! इस प्रकार के दुष्ट हीन मनुष्यों को 'पशु'

समझना चाहिए । इनका देवी-पूजन सिद्धि-दायक नहीं होता । अतः पशु-स्वभाव वाले साधकों का निराकरण करना चाहिए । वे परमार्थ के कार्यों से सर्वथा बाहर ही रखे जाने चाहिए ।।५०-५३

।। श्रीदेव्युवाच ।।

किं चित्रं कथितं नाथ ! सन्देहः प्रबली-कृतः । क्षुद्रो हि पशु-भावश्च गदितो यत् स्वयं सदा ।।५४
अर्चितं पशु-भावेन वरं साधारणं वद । देवता नैव जानाति तस्मात् समर्पितं नहि ।।५५
भञ्ज भञ्जाशु सन्देहं करुणा-सागर, प्रभो ! सूर्यो यथा सदा हन्ति चान्धकारं क्षणादपि ।।५६

श्री देवी बोलीं—हे नाथ ! आपने क्या ही विचित्र बात बताई है, इससे मेरा सन्देह और भी पुष्ट हो गया है । आपने स्वयं सदा बताया है कि 'पशु-भाव' क्षुद्र भाव है, इसे 'साधारण भाव' कहना अधिक उचित होगा किन्तु पशु-भाव से की गई साधना को यदि देवता 'साधना' न समझें और उस साधना का फल देवता को अर्पित न हो सके, तो उक्त क्षुद्र भाव को 'पशु-भाव' या 'साधारण भाव' कैसे कहा जा सकता है ? हे दया-मय प्रभो ! मेरे इस सन्देह को शीघ्र नष्ट करें, जैसे सूर्य अँधेरे को क्षण भर में नष्ट कर देता है ।।५४-५६

।। श्रीशिव उवाच ।।

भद्रमुक्तं त्वया विज्ञे ! तत्त्वं तु श्रृणु संस्कृतम् ! य उक्तः पशु-भावो हि कलौ कस्तस्य पालकः ।।५७
पञ्च-तत्त्वं न गृह्णाति तत्र निन्दां करोति न । शिवेन गदितं यत् तु तत् सत्यमिति भावयन् ।।५८
निन्दायाः पातकं वेत्ति पाशवः स प्रकीर्तितः । तस्याचारं वदाम्याशु श्रृणु संशय-नाशनम् ।।५९

श्री शिव ने कहा—हे विशेष जाननेवाली देवि ! तुमने ठीक कहा । शुद्ध सार की बात सुनो । जिसे 'पशु-भाव' कहते हैं, उसका पालन करनेवाला कलि-युग में कौन है ? जो पञ्च-तत्त्व को ग्रहण नहीं करता किन्तु उसकी निन्दा नहीं करता । शिव ने जो कुछ कहा है, वह सत्य है—यही वह सोचता है । निन्दा करना वह पाप समझता है । वही 'पाशव' या 'पशु-भाव' का पालन करनेवाला है । उसके 'आचार' को मैं बताता हूँ, जो सन्देह को नष्ट कर देता है, उसे सुनो ।।५७-५९

हविष्यं भक्षयेन्नित्यं ताम्बूलं न स्पृशेदपि । ऋतु-स्नातां बिना नारीं काम-भावे न हि स्पृशेत् ।।६०
पर-स्त्रियं काम-भावो दृष्ट्वा स्वर्णं समुत्सृजेत् । सन्त्यजेन्मत्स्य-मांसानि पाशवो नित्यमेव च ।।६१
गन्ध-माल्यानि वस्त्राणि चीराणि प्रभजेन्न च । देवालये सदा तिष्ठेदाहारार्थं गृहं व्रजेत् ।।६२
कन्या-पुत्रादि-वात्सल्यं कुर्यान्नित्यं समाकुलः । ऐश्वर्यं प्रार्थयेन्नैव यद्यस्ति तत् न त्यजेत् ।।६३
सदा दानं समाकुर्याद् यदि सन्ति धनानि च । कार्पण्यं नैव कर्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।।६४

'पशु-भाव' का पालन करनेवाला नित्य हविष्यान्न खाए, ताम्बूल को छुए भी नहीं । ऋतु-स्नान की हुई नारी के सिवा किसी नारी को काम से स्पर्श न करे । पराई

स्त्री को यदि काम-भाव से देखे, तो तत्काल स्वर्ण-दान कर प्रायश्चित्त करे । पशु-भाव के साधक को मत्स्य, मांस आदि का सदा त्याग करना चाहिए । सुगन्ध, पुष्प-माला, रेशमी वस्त्रादि धारण न करे । सदा मन्दिर में रहे, भोजन के लिए ही घर में जाए । पुत्र-पुत्री आदि से सदा स्नेह करे । सदैव ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता रहे और जो कुछ पास में हो, उसका त्याग न करे । यदि पास में धन हो, तो सदा दान-पुण्य करता रहे । यदि अपना भला चाहता हो, तो कभी कंजूसी न करे ।।६०-६४

कार्य-द्रोहान् क्षिपेत् सर्वानहङ्कारादिकांस्ततः । विशेषेण महा - देवि ! क्रोधं संवर्जयेदपि ।।६५
सेवनं परमं कुर्यात् पित्रोर्नित्यं समाहितः । पर-निन्दां पर-द्रोहानहङ्कारादिकान् क्षिपेत् ।।६६

हे महा-देवि ! कर्म में बाधा डालनेवाले अहङ्कार आदि सभी को दूर करे । विशेष कर क्रोध को दूर रखे । प्रति-दिन माता-पिता की सेवा मन लगाकर करता रहे । दूसरों की निन्दा, दूसरों से शत्रुता और अहङ्कार से दूर रहे ।।६५-६६

कदाचिद् दीक्षयेन्नैव पाशवः परमेश्वरि ! । सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नान्यथा वचनं मम ।।६७
अज्ञानाद् यदि वा लोभान्मन्त्र - दानं करोति च । सत्यं सत्यं महा - देवि ! देवी-शापं प्रजायते ।।६८

हे परमेश्वरि ! पशु-भाववाले को कभी दीक्षा न दे । यह अत्यन्त सत्य बात है, इसकी उपेक्षा कभी न करे । अज्ञान या लोभ-वश यदि कोई मन्त्र देता है, तो हे महा-देवि ! उसे देवी का शाप लगता है, यह सर्वथा सत्य है ।।६७-६८

इत्यादि बहुधाऽऽचाराः क्वचिद् ब्रूमः पशोर्मतेः । तथापि च न मोक्षः स्यात् सिद्धिश्चैव कदाचन ।।६९
यदि चंक्रमणे शक्तिः खड्ग - धारे सदा नरः । पश्वाचारं सदा कुर्यात् किन्तु सिद्धिर्न जायते ।।७०
जम्बू-द्वीपे कलौ देवि ! ब्राह्मणो हि कदाचन । पशुर्न स्यात् पशुर्न स्यात् पशुर्न स्यात् शिवाज्ञया ।।७१

इस प्रकार 'पशु साधक' के बहुत से आचार मैंने बताए हैं, तथापि इनसे न मोक्ष मिलता है और न ही कभी सिद्धि मिलती है । यदि किसी मनुष्य को खड्ग की धार पर चलने की क्षमता हो, तो वह पश्वाचार का सदा पालन करे, किन्तु उसे सिद्धि नहीं मिलेगी । हे देवि ! कलि-युग में जम्बू-द्वीप का कोई ब्राह्मण कभी पशु-साधक न बने, ऐसी शिव की आज्ञा है ।।६९-७१

सत्ये क्रमाच्चतुर्वर्णैः क्षीराज्य - मधु - पिष्टकैः । त्रेतायां पूज्यते देवि ! घृतेन सर्व - जातिभिः ।।७२
मधुभिः सर्व - वर्णैश्च पूजिता द्वापरे युगे । पूजनीया कलौ देवि ! केवलैरासवैः शवैः ।।७३

हे देवि ! सत्य-युग में चारों वर्ण क्रमशः दूध घी, मधु और पिष्टक द्वारा और त्रेता-युग में सभी जातियाँ घी द्वारा पूजा करें । द्वापर-युग में सभी वर्ण मधु द्वारा और हे देवि ! कलि-युग में केवल आसव द्वारा ही देवी पूजनीया हैं ।।७२-७३

नानुकल्पः कलौ दुर्गे ! नानुकल्पः कलौ युगे । नानुकल्पो ब्राह्मणानां शूद्रादीनां कलौ युगे ।।७४
सत्यमेतत् सत्यमेतत् सत्यमेतच्छिवोदितम् । सद्-गुरोः शरणं नीत्वा कुलाचारं भजेन्नरः ।।७५

हे दुर्गे ! कलि-युग में अनुकल्प का विधान नहीं है । कलि-युग में ब्राह्मणों और शूद्र आदि के लिए अनुकल्प नहीं है । शिव द्वारा कथित यह सर्वथा सत्य है । सद्-गुरु की शरण लेकर व्यक्ति को कुलाचार का पालन करना चाहिए ।।७४-७५

दिव्यत्वं लभते किम्वा वीरत्वं लभते शुभे ! असाध्यं साधयेद् वीरोऽप्यनायासेन यद् भुवि ।।७६
वीरत्वं क्लेशतो देवि ! प्राप्नोतीह न चान्यथा । पशु - कल्प-शतैर्वापि साधितुं न च तत् क्षमः ।।७७
लङ्घितुं नैव शक्नोति यथा पशुर्गिरिं क्वचित् । अति - गुह्यमिदं प्रोक्तं रहस्यं त्वयि सुन्दरि ! ।।७८
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं सदाऽनघे ! ।।७९

हे कल्याणि ! दिव्य-भाव को प्राप्त करे, चाहे वीर-भाव को । वीर साधक पृथ्वी पर अनायास ही असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है । हे देवि ! इस संसार में वीर-भाव कठिनाई से प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं । सैकड़ों पशु-कल्पों से भी वैसी सिद्धि पाने में कोई समर्थ नहीं होता, जैसे कोई पशु कभी पर्वत को पार नहीं कर सकता । हे सुन्दरि ! यह अत्यन्त गुप्त रहस्य तुमसे कहा है । इसे हे अनघे ! सदा गोपनीय रखना चाहिए ।।७६-७९

।। श्रीकामाख्या-तन्त्रे देवीश्वर-सम्वादे पञ्चमः पटलः ।।

षष्ठः पटलः

काम-कला साधनं (काम-कला का साधन)

।। श्रीदेव्युवाच ।।

कस्या देव्याः साधकानामेकान्त - निन्दनं महत् । न कृत्वा पञ्च - तत्त्वैश्च पूजनं परमेश्वर ! ।।१

श्री देवी बोलीं—हे परमेश्वर ! पञ्च-तत्त्वों से जो साधक देवी का पूजन नहीं करते, उनमें किन देवियों के साधक और कौन सबसे अधिक निन्दनीय हैं ? ।।१

।। श्रीशिव उवाच ।।

कलौ तु सर्व - शाक्तानां ब्राह्मणानां विशेषतः । पञ्च-तत्त्व-विहीनानां निन्दनं परमेश्वरि ! ।।२
तन्मध्ये कालिका - तारा - साधकानां कुलेश्वरि ! मद्यं विना साधनं च महा - हास्याय कल्पते ।।३
यथा दीक्षां विना देवि ! साधनं हास्यमेव हि । तथा तयोः साधकानां ज्ञेयं तत्त्वं विना सदा ।।४

श्रीशिव ने कहा—हे परमेश्वरि ! कलि-युग में पञ्च-तत्त्व-विहीन सभी शाक्तों में विशेषतया ब्राह्मण साधक निन्दनीय हैं । उनमें भी हे कुलेश्वरि ! कालिका और तारा के साधकों की मद्य बिना साधना अति हास्यास्पद है । हे देवि ! जैसे दीक्षा के बिना

साधना करना हास्यास्पद है, उसी प्रकार इन दोनों महा-देवियों के साधकों की तत्त्व-रहित साधना समझनी चाहिए ।।२-४

शिलायां शस्य - वापैश्च न भवेदंकुरो यथा । अनावृष्ट्या क्षितौ देवि ! कर्षणं यथा नहि ।।५
ऋतुं विना कुतो देवि ! कुतोपऽत्यं प्रजायते । गमनं च विना क्वापि ग्राम - प्राप्तिर्यथा न च ।।६
अतो देव्याः साधनेषु पञ्च - तत्त्वं सदा लभेत् । पञ्च - तत्त्वैः साधकेन्द्रावर्चयेद् विधिना मुदा ।।७

हे देवि ! जैसे शिला में बोया हुआ वीज अंकुरित नहीं होता, वर्षा के बिना भूमि जोती नहीं जा सकती, ऋतु के बिना सन्तान नहीं होती और बिना चले किसी गाँव तक पहुँचा नहीं जा सकता, उसी प्रकार पञ्च-तत्त्वों के बिना देवी की साधना सफल नहीं होती । अतः दोनों महा-विद्याओं के साधकों को प्रसन्न मन से विधि-पूर्वक पंच-तत्त्वों से पूजन करना चाहिए ।।५-७

मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि । स्त्रीभिः सार्द्धं सदा साधुरर्चयेज्जगदम्बिकाम् ।।८
अन्यथा च महा - निन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः । कायेन मनसा वाचा तस्मात् तत्त्व-परो भवेत् ।।९

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और स्त्रियों के सम्पर्क में सदैव जगदम्बा का उत्तम अर्चन करना चाहिए । अन्यथा विद्वानों और देवताओं द्वारा निन्दा की जाती है । अतः मन, वचन और शरीर से तत्त्व-परायण होना चाहिए ।।८-९

कालिका - तारिणी - दीक्षां गृहीत्वा मद्य-सेवनम् । न करोति नरो यस्तु स कलौ पतितो भवेत् ।।१०
वैदिकीं तान्त्रिकीं सन्ध्यां जप-होम - बहिष्कृतः । अब्राह्मणः स एवोक्तः स एव हन्ति मूर्खकः ।।११
शूनी - मूत्र - समं तस्य तर्पणं यत् पितृष्वपि । अतो न तर्पयेत् सोऽपि यदीच्छेदात्मनो हितम् ।।१२

कालिका और तारिणी की दीक्षा लेकर जो मनुष्य मद्य-सेवन नहीं करता, वह कलियुग में पतित होता हैं । वैदिकी और तान्त्रिकी सन्ध्या तथा जप-होम से बहिष्कृत होकर वह अब्राह्मण कहा जाता है तथा वह मूख नष्ट होता है । पितरों के लिए वह जो तर्पण करता है, वह भी स्वीकृत नहीं होता । अतः ऐसे व्यक्ति को यदि अपने कल्याण की इच्छा हो, तो पितरों का तर्पण न करें ।।१०-१२

काली - तारा - मनुं प्राप्य वीराचारं करोति न । शूद्रत्वं तच्छरीरे तु प्राप्तं तेन न चान्यथा ।।१३
क्षत्रियोऽपि तथा देवि ! वैश्यश्चाण्डालतां व्रजेत् । शूद्रो हि शूकरत्वं च याति याति न संशयः ।।१४
अवश्यं ब्राह्मणो नित्यं राजा वैश्यश्च शूद्रकः । पञ्च-तत्त्वैः भजेद् देवीं न कुर्यात् संशयं क्वचित् ।।१५

काली और तारा के मन्त्र को पाकर जो 'वीराचार' का पालन नहीं करता, उसके शरीर में शूद्रता आ जाती है । ऐसे क्षत्रिय की भी वही दशा होती है । वैश्य चाण्डाल के सामान और शूद्र शूकर के समान पाप-ग्रस्त हो जाता है । अतः ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी को सदा पंच-तत्त्वों से देवी की पूजा करनी चाहिए, इसमें कुछ भी शङ्का न करे ।।१३-१५

पञ्च-तत्त्वैः कलौ देवि ! पूजयेद् यः कुलेश्वरीम् । तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि विद्यते ।।१६
स ब्राह्मणो वैष्णवश्च स शाक्तो गाणपोऽपि च । सौरः स परमार्थी च स एव पूर्ण - दीक्षितः ।।१७
स एव धार्मिकः साधुर्ज्ञानी चैव महा - कृतिः । याज्ञिकः सर्व-कर्मार्हः सो हि देवो न चान्यथा ।।१८

हे देवि ! कलि-युग में जो कुलेश्वरी की पूजा पंच-तत्त्वों से करता है, उसके लिए तीनों लोकों में कोई भो कार्य असाध्य नहीं रह जाता । वही व्यक्ति ब्रह्म-ज्ञानी, विष्णु-भक्त, शक्ति-उपासक, गणेशोपासक, सूर्योपासक, परमार्थी और पूर्ण दीक्षित माना जाता है । वही वास्तव में धार्मिक साधु, ज्ञानी, अत्यन्त पुण्यात्मा, यज्ञ-कर्ता, सभी कार्यों में योग्य और देव-स्वरूप होता है ।।१६-१८

पावनानीह तीर्थानि सर्वेषामिति सम्मतम् । तीर्थानां पावनः कौलो गिरिजे ! बहु किं वचः ।।१९
अस्यैव जननी धन्या धन्या हि जनकादयः । धन्या ज्ञाति - कुटुम्बाश्च धन्या आलापिनो जनाः ।।२०

हे गिरिजे ! सभी का मत है कि तीर्थ पवित्र होते हैं । उन तीर्थों से भी पवित्र 'कौल' साधक होता है, इससे अधिक क्या कहूँ । उसी की मां धन्य है और उसी का पिता धन्य है, उसी की जाति और परिवारवाले धन्य हैं, उससे बात करनेवाले धन्य हैं ।।१९-२०

नृत्यन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा । अपि कश्चित् कुलेऽस्माकं कुल - ज्ञानी भविष्यति ।।२१
तदा योग्या भविष्यामः कुलीनानां सभा - तले । समागन्तुमिति ज्ञात्वा सूत्सुकाः पितरः परे ।।२२
कुलाचारस्य माहात्म्यं किं ब्रूमः परमेश्वरि ! पञ्च - वक्त्रेण देवेशि ! सनातन्याः फलानि च ।।२३

हे परमेश्वरि ! समस्त पितर लोग नाचते गाते हुए आनन्द से कहते हैं कि कोई हमारे भो कुल में कुल-ज्ञानी होगा, जिससे हम कुलीनों की सभा में सम्मिलित होने के योग्य हो सकेंगे । यह जानकर अन्य पितर भी उत्सुक हो उठते हैं । हे देवेशि ! पंच-मुखों से कुलाचार की महिमा और उसके फलों का वर्णन कहाँ तक करूँ ! ।।२१-२३

।। श्रीदेव्युवाच ।।

साधनं वद कौलेश ! साधकानां सुखावहम् । दिव्यं रम्यं मनोहारि सर्वाभीष्ट - फल प्रदम् ।।२४

श्री देवी बोलीं—हे कौलेश ! साधकों को सुख-दायक साधन बताइए, जो दिव्य, सुन्दर, मनोहर और सभी वांछित फलों को देनेवाला हो ।।२४

।। श्रीशिव उवाच ।।

शृणु काम-कलां कान्ते ! साधनं तु सुखावहम् । यत् किञ्चिद् गदितं पूर्वं विस्मृतं तद् वदाम्यहम् ।।२५

श्री शिव ने कहा—हे कान्ते ! सुख-दायक 'काम-कला' के साधन को सुनो । जो कुछ मैंने पहले बताया था, वह विस्मृत हो गया है । उसी को फिर बताता हूँ ।।२५

अति-सुललित-दिव्यं स्थानमालोक्य तु भक्त्या, हृदि च परम - देवीं सम्विभाव्यैक - चित्तः।
मधुर - कुसुम - गन्धैर्व्याप्तमाहृत्य साधुः, तदुपरि खलु तिष्ठेत् साधनार्थी कुलज्ञः ।।२६

कुल-ज्ञानी साधक अत्यन्त सुन्दर और दिव्य स्थान को देखकर भक्ति-पूर्वक और हृदय में परमा देवी का एकाग्र चित्त से ध्यान कर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से उस स्थान को सज्जित कर उस पर बैठे ।।२६

जयवति यतमानः शब्द - पुष्पं क्षिपेत् तत्, स खलु करक - बीजान्यत्र दुर्गे ! ततो हि।
चिर - भव - बक - पुष्पं वर्जयित्वाऽर्चयित्वा, यदि जपति विधिज्ञस्तत्क्षणात् सोप्यहं च ।।२७
उप - वन - परि - युक्ते शुद्ध - रम्यालये यो, विधि - कृत - वर - लिङ्गं लेपयित्वा सुगन्धैः।
विविध - कुसुम - धूपैर्धूपयित्वा लतांसः, सम्प्रति जपति सु-भक्त्या त्वत् - सुतो जायते सः ।।२८
अचल - शिखर - मध्ये शीघ्रमालम्बयित्वा, कनक - कुसुम - सार्धं शब्द - पुष्पं निवेद्य।
कृत - बहु - विधि - पूजाः स्वं गुरुं भावयित्वा, जपति यदि विलासी विष्णुरेव स्वयं सः ।।२९
परिचरति स साधुः सिद्धि - वर्गः सशङ्कः, पर - वधू - लतानां वक्त्र - पद्मोपभोगी।
जयति भुवन - मध्ये निर्जरश्चामरोऽपि, व्रजति तमनु नित्यं सार्वभौमो नृणां सः ।।३०
अभिनव - शुभनीरं रक्त - पद्म - प्रकीर्णम्, विविध - कमल - रम्यं भर्ज - मीन - प्रयुक्तम्।
अपर - विहित - वस्तु व्याप्तमीशेश्वरोऽपि, विगत - जन - समूहे प्राप्य देवि ! प्रकोणे ।।३१
घन - जनित - सुशोभे विद्युदादीप्ति - रम्ये, हृदि च परम - देवीं चिन्तयित्वा सु - भक्त्या।
विधि - विहित - विधानैः स्नान - पूजां समाप्य, प्रति - जपति निशायां गह्वरे ब्रह्म कः स्यात् ।।३२
इह च गुरु - वराज्ञां प्राप्य शीर्षे निधाय, त्वयि भजति कुलज्ञो भाव - भेदात् कुलेशि !
सुर - गुरुरिह को वा कोऽपि चन्द्रो दिनेशो, व्रजति भुवन - मध्ये दिक् - पतित्वं च कोऽपि ।।३३
इति च परम - देव्याः साधनं यन्मयोक्तम्, यदि पठति सु - भव्यो गद्-गदो वासनाभिः।
अभिमत - फल - सिद्धिः सर्व - लोकैर्वरेण्यो, भवति भुवन - मध्ये पुत्र - दारैर्युतोऽपि ।।३४
अचल - घन - समूहस्तस्य भोगे वसेत् तु, प्रतिदिनमभिपूजा देवता - गृहे च।
परिजन - गण - भक्तिः सर्वदा तत्र तिष्ठेत्, सदसि वसति राज्ञः सादरः सोऽपि वन्द्यः ।।३५

[श्लोक २७ से ३५ तक विशेष विधान वर्णित है, जो सामान्य साधकों के लिए बोध-गम्य नहीं है । जिज्ञासु पाठक अपने गुरुदेव से उसे समझ सकते हैं ।—सं०]

।। श्रीकामाख्या-तन्त्रे पार्वतीश्वर-संवादे षष्ठः पटलः ।।

सप्तमः पटलः

।। श्रीदेव्युवाच ।।

श्रुतं रहस्यं देवेश ! कामाख्याया महेश्वर ! महा - शत्रु - विनाशाय, साधनं किं वद प्रभो ! ।।१

श्री देवी बोलीं—हे देवेश, महेश्वर ! कामाख्या के रहस्य को मैंने सुना। हे प्रभो ! बताइए कि महान् शत्रु के विनाश का क्या उपाय है ? ।।१

।। श्रीशिव उवाच ।।

अति - गुह्यतरं देवि ! तव स्नेहाद् वितन्यते । महा - वीरः साधकेन्द्रः, प्रयोगं तु समाचरेत् ।।२
पूजयित्वा महा-देवीं, पञ्च-तत्त्वेन साधकः । महाऽऽनन्द-मयो भूत्वा, साधयेत् साधनं महत् ।।३

श्री शिव ने कहा—हे देवि ! और भी अधिक गुप्त बात तुम्हारे स्नेह से बताता हूँ । महा-वीर श्रेष्ठ साधक को इस प्रयोग को करना चाहिए । महा-देवी का पञ्च-तत्त्वों से पूजन कर अत्यन्त आनन्द-मय होकर इस महान् उपाय को करे ।।२-३

स्व-मूत्रं तु समादाय, कूर्च - वीजेन शोधयेत् । तर्पयेद् भैरवीं घोरां, शत्रु-नाम्ना पिवेत् स्वयम् ।।४
दश-दिक्षु महा - पीठे, प्रक्षिपेदाननेऽपि च । नग्नो भूत्वा भ्रमेत् तत्र, शत्रु-नाशो भवेद् ध्रुवम् ।।५

अपने मूत्र को लेकर कूर्च-वीज (हूँ) से शुद्ध करे । घोर-स्वरूपा भैरवी का तर्पण करे और शत्रु का नाम लेकर उसे स्वयं पी जाए । दस दिशाओं में, महा-पीठ पर और मुख पर उसे छिड़ककर और नग्न होकर वहाँ भ्रमण करे । इस प्रयोग से निश्चय ही शत्रु का नाश हो जायगा ।।४-५

शुक्र - शोणित - मूत्रेषु, वीरो यदि घृणी भवेत् । भैरवी कुपिता तस्य, सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।६
दृष्ट्वा श्रुत्वा महेशानि ! निन्दां करोति यो नरः । स महा-नरकं याति, यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ।।७

वीर्य, रक्त और मूत्र—इन सबके प्रति यदि वीर-साधक को घृणा हो, तो भैरवी उस क्रोधित होती है, यह मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ । हे महेशानि ! देख या सुनकर जो मनुष्य निन्दा करता है, वह चन्द्र और सूर्य जब तक हैं, तब तक भयङ्कर नरक में रहता है ।।६-७

वीराचारं महेशानि ! न निन्देत् मनसाऽपि च । वीरो यस्तु महा-देवि ! स्वेच्छाचारी सदा शुचिः ।।८

हे महेशानि ! 'वीराचार' की निन्दा मन से भी न करनी चाहिए । हे महा-देवि ! जो 'वीर' है, वह सदा स्वेच्छाचारी होकर भी सदा पवित्र रहता है ।।८

मृत्पात्रं तु समादाय, साध्य-नाम लिखेच्छिवे ! वायुना पुटितं कृत्वा, स्व - मूत्रं तत्र निक्षिपेत् ।।९
उन्मादो जायते शत्रुः, म्रियते वा महेश्वरि ! माया - वीजं महेशानि ! अष्टोत्तर-शतं जपेत् ।।१०

हे शिवे ! मिट्टी का पात्र लेकन 'साध्य' का नाम लिखे । वायु-वीज (यं) से उसे पुटित कर उस पर अपना मूत्र छिड़के और माया-वीज (ह्रीं) का १०८ बार जप करे । इससे हे महेश्वरि ! शत्रु को उन्माद होता है या वह मर जाता है ।।९-१०

भैरव्यै तर्पयेत् देवि ! मारणोच्चाटनं भवेत् । स्व-मूत्रं च समादाय, वाम - हस्तेन शङ्करि ! ।।११
शोधितं भैरवी-मन्त्रे, निःक्षिपेत् साधकोत्तमः । उन्मादो जायते शत्रुः, म्रियते वा महेश्वरि !
मोहितः क्षोभितो वापि, वश्यो वापि भवेद् ध्रुवम् ।।१२

हे देवि, शङ्करि ! बाएँ हाथ से अपने मूत्र को लेकर भैरवी का तर्पण करे, तो मारण और उच्चाटन होते हैं। भैरवी-मन्त्र (ह्स्त्रैं) से शोधित स्व-मूत्र को श्रेष्ठ साधक फेंके, तो हे महेश्वर ! शत्रु को उन्माद होता है, या वह मुग्ध अथवा क्षुब्ध या वशीभूत होता है, यह निश्चित है ।।११-१२

मूत्र-साधन-मात्रेण, सहस्राक्ष-समं रिपुम् । नाशयेत् साधको वीरो, नात्र कार्या विचारणा ।।१३

वीर साधक केवल मूत्र-साधन द्वारा इन्द्र के समान शत्रु का नाश कर देता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।१३

।। श्रीदेव्युवाच ।।

शुक्र - शोणित - मूत्राणि, शुद्धानीह कथं प्रभो ? तद् वदस्व महेशान ! सन्देह-नाशनं मम ।।१४

श्री देवी बोलीं—हे प्रभो, महेशान ! वीर्य, रक्त और मूत्र इस संसार में शुद्ध कैसे हैं ? यह बताइए और मेरे सन्देह को नष्ट करें ।।१४

।। श्रीशिव उवाच ।।

शृणु देवि ! रहस्यं च, महा-ज्ञानं वदाम्यहम् । शुक्रोऽहं शोणितं त्वं हि, द्वयोरेवाखिलं जगत् ।।१५
शुद्धं सर्व - शरीरं तु, शुक्र - शोणितजं यतः । एवम्भूत - शरीरे तु, यद् - यद् वस्तु प्रजायते ।।१६
अशुद्धं तु कथं देवि ! पामरो निन्दति ध्रुवम् । ब्रह्म - ज्ञानमिदं देवि ! मया ते गदितं किल ।।१७

श्री शिव ने कहा—हे देवि ! रहस्य को सुनो। महान् ज्ञान को मैं बताता हूँ। वीर्य मैं हूँ, रक्त तुम हो। इन दोनों ही से सारा विश्व है। समस्त शरीर ही शुद्ध है क्योंकि यह वीर्य और रक्त से उत्पन्न होता है। इस प्रकार के शरीर में जो-जो वस्तु होती है, वह हे देवि ! अशुद्ध कैसे है ? पापी ही निन्दा करता है, यह निश्चित है। हे देवि ! यह ब्रह्म-ज्ञान है, जिसे मैंने तुमसे कहा है ।।१५-१७

अतः शुद्धं जगत् सर्वं, स्व-कायस्थे तु का कथा । ब्रह्म-ज्ञानं विना देवि ! न च मोक्षः प्रजायते ।।१८
ब्रह्म-ज्ञानी शिवः साक्षाद्, विष्णुर्ब्रह्मा च पार्वति ! स एव दीक्षितः शुद्धो, ब्राह्मणो वेद-पारगः ।।१९
क्रोड़े तस्य वसन्तीह, सर्व-तीर्थानि निश्चितम् ।।२०

हे देवि ! इस प्रकार सारा संसार ही शुद्ध है। फिर अपने शरीर में विद्यमान वस्तुओं का क्या कहना। ब्रह्म-ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। हे पार्वति ! ब्रह्म-ज्ञानी साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही होता है। वही दीक्षा-प्राप्त साधक है, शुद्ध वेदज्ञ ब्राह्मण है। उसकी गोद में समस्त तीर्थ निश्चित रूप से निवास करते हैं ।।१८-२०

।। श्रीकामाख्या-तन्त्रे पार्वतीश्वर-सम्वादे सप्तमः पटल ।।

अष्टमः पटलः

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

महा-देव, जगद्-वन्द्य ! करुणा - सागर, प्रभो ! पूर्णाभिषेकं कौलानां, वद मे सुख-मोक्षदम् ॥१

श्री देवी बोलीं—हे विश्व-वन्दनीय महा-देव ! दया - सागर भगवन् ! कौलों के 'पूर्णाभिषेक' के सम्बन्ध में मुझे बताइए, जो सुख-प्रद और मोक्ष-दायक होता है ॥१

॥ श्रीशिव उवाच ॥

शृणु देवि ! मम प्राण-वल्लभे ! परमाद्भुतम् । पूर्णाभिषेकं सर्वाशा - पूरकं शिवता-प्रदम् ॥२

श्री शिव ने कहा—हे मेरी प्राण-प्रिये, देवि ! अत्यन्त विलक्षण 'पूर्णाभिषेक' के सम्बन्ध में सुनो, जो सभी आशाओं की पूर्ति करनेवाला और शिवत्व को देनेवाला है ॥२

आगत्य सद्-गुरुं सिद्धं, मन्त्र-तन्त्र-विशारदम् । कौलं सर्व-जन - श्रेष्ठमभिषेक - विधिं चरेत् ॥३
अति-गुप्तालये शुद्धे, रम्ये कौलिक-सम्मते । वेश्याङ्गनाः समानीय, तत्त्वानि च सु-यत्नतः ॥४
विशिष्टान् कौलिकान् भक्त्या, तत्रैव सन्निवेशयेत् । अर्चयेदभिषेकार्थं, गुरुं वस्त्रादि-भूषणैः ॥५

मन्त्र-तन्त्र में पारङ्गत, सिद्ध और सभी में श्रेष्ठ कौल सद्गुरु के पास आकर 'अभिषेक' की विधि को करे। अत्यन्त गुप्त और शुद्ध तथा सुन्दर गृह में, जो कौलिक द्वारा समर्थित हो, वेश्याङ्गनाओं और तत्त्वों को सुन्दर प्रयत्न के साथ एकत्रित करे। फिर वहीं विशिष्ट कौलों को बुलाकर भक्ति-पूर्वक बिठाये। तब 'अभिषेक' के वस्त्रादि आभूषणों से गुरु की पूजा करे ॥३-५

प्रणमेद् विधि-वद् भक्त्या, तोषयेत् स्तुति-वाक्यतः । प्रार्थयेच्छुद्ध-भावेन, कुल-धर्मं वदेति च ॥६
कृतार्थं कुरु मे नाथ ! श्रीगुरो, करुणा - निधे ! अभिषिक्तैः साधकैश्च, सेवार्थं शरणागतः ॥७

विधि-वत्, भक्ति-पूर्वक गुरु को प्रणाम करे, स्तुति - वचनों से उन्हें प्रसन्न करे। फिर शुद्ध भाव से प्रार्थना करे कि 'हे नाथ ! कुल-धर्म को बताएँ और मुझे कृतार्थ करें। हे दया-सागर, श्री गुरुदेव ! मैं अभिषिक्त साधकों के साथ आपकी शरण में आया हूँ' ॥६-७

ततोऽभिषिक्त्वा तत्त्वानि,शोधयेच्छक्तिमान् मुदा । स्थापयित्वा पुरः कुम्भं, मन्त्रैर्मुद्राभिः प्रिये! ॥८
वितानैर्धूप - दीपैश्च, कृत्वा चामोदितं स्थलम् । नाना - पुष्पैस्तथा गन्धैः, सर्वोपकरणैर्यजेत् ॥९

हे प्रिये ! तब शक्तिमान् गुरु प्रसन्न होकर तत्त्वों का शोधन करे और मन्त्रों एवं मुद्राओं द्वारा अपने सम्मुख कलश की स्थापना कर धूप-दीप आदि के द्वारा वातावरण को प्रफुल्लित कर विविध पुष्पों, सुगन्धियों और सभी प्रकार की सामग्रियों से पूजन करे ॥८-९

समाप्य महतीं पूजां, तत्त्वानि सन्निवेद्य च । आदौ स्त्रीभ्यः समर्प्यैव, प्रसादाल्पं भजेत् ततः ।।१०
शुभ-चक्रं विनिर्माय, आगमोक्त-विधानतः । अभिषिक्त्वा साधकांश्च, पाययेत् तु स्वयं पिबेत् ।।११

महा-पूजा को समाप्त कर और तत्त्वों को अर्पित कर चुकने पर पहले स्त्रियों को देकर तब थोड़ा प्रसाद स्वयं ग्रहण करे। तन्त्रोक्त विधि से चक्र की रचना कर साधकों का अभिषेक कर उन्हें पान कराए और स्वयं पान करे ।।१०-११

भुंजीरन् मत्स्य-मांसाद्यैश्चर्व्य-चोष्यादिभिश्च । तैः रमेरन् परमानन्दैर्वेश्यायां च यथा-सुखम् ।।१२
वदेयुः कर्म - कर्तुश्च, सिद्धिर्भवतु निश्चला । अभिषेचन-कर्माशु, निर्विघ्नं चेति निश्चितम् ।।१३

मत्स्य, मांसादि चर्व्य और चोष्य भोजन करते हुए यथा - सुख वेश्याओं के साथ परमानन्द के साथ विहार करें और कहें कि 'कर्म करानेवाले को अटल सिद्धि प्राप्त हो ।' इस प्रकार 'अभिषेक'-कर्म निश्चय ही शीघ्र और निर्विघ्न सम्पन्न होता है ।।१२-१३

चक्रालयान्निःसरेन्न जन एकोऽपि शङ्करि ! प्रातःकृत्यादि-कर्माणि, कुर्यात् तत्रैव साधकः ।।१४
दिनानि त्रीणि संव्याप्य, भक्त्या तांस्तु समर्चयेत् । शिष्यश्चादौ दिवा-रात्रमभिषिक्तो भवेत् ततः ।।१५

हे शङ्करि ! चक्रालय से एक भी व्यक्ति बाहर न निकले । प्रत्येक साधक को वहीं प्रातः-कृत्यादि समस्त कार्य करने चाहिए । इस प्रकार तीन दिनों तक शिष्य रात-दिन भक्ति-पूर्वक उन सबका अर्चन करे । तब वह 'अभिषिक्त' होता है ।।१४-१५

अनुष्ठान-विधिं वक्ष्ये, सादरं शृणु पार्वति ! न प्रकाण्डं नहि क्षुद्रं, प्रमाणं घटमाहरेत् ।।१६
ताम्रेण निर्मितं वापि, स्वर्णेन निर्मितं च वा । प्रवालं हीरकं मुक्तां, स्वर्ण - रूप्ये तथैव च ।।१७

हे पार्वति ! अनुष्ठान की विधि बताता हूँ, सादर सुनो । न बहुत बड़ा और न बहुत छोटा--उचित रूप का 'घट' लाये । चाहे ताँबे का बना हो या सोने का अथवा हीरे-मोती-मूंगे या सोने-चाँदी का हो ।।१६-१७

नानालङ्कार-वस्त्राणि, नाना-द्रव्याणि भूरिशः । कस्तूरी-कुंकुमादीनि, नाना-गन्धानि चाहरेत् ।१८
नाना-पुष्पाणि माल्यानि, पञ्च-तत्त्वानि यत्नतः । विहितान् धूप - दीपांश्च, घृतेन यत्नतः ।।१९

विविध प्रकार के आभूषण और वस्त्र, विविध प्रकार के द्रव्य पर्याप्त मात्रा में, कस्तूरी-कुंकुम और विविध प्रकार के सुगन्धित पदार्थ एकत्र करे । विविध प्रकार के पुष्प और मालाएँ. यत्न-पूर्वक पाँचों तत्त्व और धूप तथा घृत-दीप प्रयत्न करके लाए ।।१८-१९

ततः शिष्यं समानीय, गुरुः शुद्धालये प्रिये ! वेश्याभिः साधकैः सार्द्धं, पूजनं च समाचरेत् ।।२०
पटलोक्त - विधानेन, भक्तितः परि-पूजयेत् । पूजां समाप्य देव्यास्तु, स्तवैस्तु प्रणमेन् मुदा ।।२१

तब हे प्रिये ! गुरुदेव शिष्य को शुद्ध गृह में लाएँ और वेश्याओं तथा साधकों के साथ पूजन करें । 'पटल' में बताई विधि से भक्ति-पूर्वक देवी की पूजा समाप्त करें और आनन्द के साथ स्तुतियों द्वारा प्रणाम करें ।।२०-२१

ततो हि शिव-शक्तिभ्यो, गन्ध-माल्यानि दापयेत् । आसनं वस्त्र-भूषाश्च, प्रत्येकेन कुलेश्वरि ! ।।२२
ततः शङ्खादि-वाद्यैश्च, मङ्गलाचरणैः परैः । घट - स्थापनकं कुर्यात्, क्रमं तत्र शृणु प्रिये ! ।।२३

तदनन्तर हे कुलेश्वरि ! शिव-शक्तियों को गन्ध, पुष्प-मालादि से सुशोभित करें । प्रत्येक को आसन, वस्त्र और आभूषण प्रदान करें। तब शङ्खादि वाद्य बजाते हुए, मङ्गलाचरण का गान करते हुए, 'घट' की स्थापना करे । हे प्रिये ! उसकी विधि सुनो ।।२२-२३

काम-वीजेन सम्प्रोक्ष्य, वाग्भवेनैव शोधयेत् । शक्त्या कलशमारोप्य, मायया पूरयेज्जलैः ।।२४
प्रवालादीन् पञ्च-रत्नान्, विन्यसेत् तत्र यत्नतः । आवाहयेच्च तीर्थानि, मन्त्रेणानेन देशिकः ।।२५

काम-वीज (क्लीं) से 'घट' का प्रोक्षण कर, वाग्-भव (ऐं) से उसे शुद्ध करे । शक्ति (सौः) से 'कलश' को स्थापित कर माया (ह्रीं) द्वारा उसे जल से भरे । उसमें यत्न-पूर्व प्रवाल (मूंगा) आदि पाँच रत्न डाले और निम्न मन्त्र से तीर्थों का अवाहन करे—।।२४-२५

ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः, समुद्राश्च सरांसि च । सर्वे समुद्राः सरितः, सरांसि जलदा नदाः ।।२६
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः, स्वर्ग-पाताल-भू-गताः । सर्व-तीर्थानि पुण्यानि, घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ।।२७

गङ्गा आदि सभी नदियाँ और समुद्र तथा सरोवर, सभी सागर एवं धाराएँ, तालाब, नद और जलाशय, पवित्र झरने आदि जो समस्त पवित्र तीर्थ स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी में हैं, वे सब इस 'घट' में प्रविष्ट हो जायँ ।।२६-२७

रमा-वीजेन जप्तेन, पल्लवं प्रतिपादयेत् । कूर्चेन फल - दानं स्याद्, गन्ध - वस्त्रे हृदात्मना ।।२८
ललनयैव सिन्दूरं, पुष्पं दद्यात् तु कामतः । मूलेन दूर्वां प्रणवैः, कुर्यादभ्युक्षणं ततः ।।२९
हूं फट् स्वाहेति मन्त्रेण, कुर्याद् दर्भैश्च ताड़नम् । विचिन्त्य मूल-पीठं तु, तत्र संयोज्यपूजयेत् ।।३०
स्व - तन्त्रोक्त-विधानेन, प्रार्थयेदमुना बुधः । तद्-घटे हस्तमारोप्य, शिष्यं पश्यन् गुरश्च सः ।।३१

रमा-वीज (श्रीं) से घट के ऊपर अभिमन्त्रित पल्लव रखे । कूर्च (हूं) से फल दे और हृद् (नमः) से गन्ध एवं वस्त्र प्रदान करे । ललना (स्त्रीं) से सिन्दूर और काम-वीज (क्लीं) से पुष्प चढ़ाए । मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए दूर्वा चढ़ाकर प्रणव (ॐ) से घट का अभ्युक्षण करे । 'हूं फट् स्वाहा' से कुशों द्वारा घट का ताड़न करे । तब घट में योनि-पीठ का ध्यान कर उसका पूजन करे । इसके बाद उस घट के ऊपर अपने तन्त्रोक्त विधान से हाथ रखकर गुरुदेव शिष्य को देखते हुए निम्न मन्त्र द्वारा घट से प्रार्थना करें—।।२८-३१

उत्तिष्ठ ब्रह्म-कलश ! देवताऽभीष्ट-दायक ! सर्व - तीर्थाम्बु - सम्पूर्ण ! पूरयास्मन्मनोरथम् ।।३२

अर्थात् समस्त तीर्थों के जल से पूर्ण एवं देवता के अभीष्ट फल को देनेवाले हे ब्रह्म-कलश ! उठो और हमारे मनोरथ को पूर्ण करो ।।३२

अभिषिञ्चेत् गुरुः शिष्यं, ततो मन्त्रैश्च पार्वति! मङ्गलैर्निखिलैर्द्रव्यैः, साधकैः शक्तिभिः सह ।।३३
पल्लवैराम्रकाद्यैश्च, नति-मत् शिष्यमेव च । आनन्दैः परमेशानि ! भक्तानां हित-कारिणी ।।३४

हे पार्वति ! परमानन्द-पूर्वक गुरुदेव निम्नोक्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए आम्र-पल्लव द्वारा पहले शिष्य का अभिषेक करें। फिर उपस्थित सभी साधकों और शक्तियों सहित समस्त मण्डल पर जल छिड़कें। इससे सभी भक्तों का कल्याण होता है।।३३-३४

अब अभिषेक-मन्त्रों का विनियोग पढ़े । यथा—

ॐ दक्षिणामूर्ति ऋषिरनुष्टुप् छन्दः, शक्तिर्देवता, सर्व-सङ्कल्प-सिद्धये विनियोगः ३५।।

।। अभिषेक-मन्त्राः ।।

ॐ राज-राजेश्वरी शक्तिर्भैरवी काल - भैरवी । श्मशान - भैरवी देवी, त्रिपुरानन्द - भैरवी ।।
त्रिकूटा त्रिपुटा देवी, तथा त्रिपुर-सुन्दरी । त्रिपुरेशी महा - देवी, तथा त्रिपुर - मालिका ।।
त्रिपुरा - नन्दिनी देवी, तथैव त्रिपुरा - तनी । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।१
ॐ छिन्नमस्ता महा-देवी, तथवैक - जटेश्वरी । परा तारा जय - दुर्गा, शूलिनी भुवनेश्वरी ।।
त्वरिताख्या महा-देवी तथैव च त्रि-खण्डिका । नित्याऽनित्य-स्वरूपा च, वज्र-प्रस्तारिणी तथा ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।२

ॐ अश्वारूढा महा-देवी, तथा महिष-मर्दिनी । दुर्गा च नव-दुर्गा च, श्रीदुर्गा भग-मालिनी ।।
तथा भगन्दरी देवी, भग - क्लिन्ना तथा परा । सर्व - चक्रेश्वरी देवी, तथा नील-सरस्वती ।।
सर्व-सिद्धि-करी देवी, सिद्ध-गन्धर्व-सेविता । उग्र-तारा महा - देवी, तथा च भद्र - कालिका ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।३
ॐ क्षेमङ्करी महा-माया, चानिरुद्ध-सरस्वती । मातङ्गिनी चान्नपूर्णा, च राज-राजेश्वरी तथा ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।४
ॐ उग्र-चण्डा प्रचण्डा च, चण्डोग्रा चण्ड-नायिका । चण्डा चण्ड-वती चैव, चण्ड-रूपाति-चण्डिका ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।५
ॐ उग्र-दंष्ट्रा महा-दंष्ट्रा, शुभ-दंष्ट्रा कपालिनी । भीम-नेत्रा विशालाक्षी, मङ्गला विजया जया ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।६
ॐ मङ्गला नन्दिनी भद्रा, लक्ष्मीः कीर्तिर्यशस्विनी । पुष्टिर्मेधा शिवा-धात्री, यशा शोभा जया धृतिः ।।
श्रीनन्दा च सुनन्दा च, नन्दिनी नन्द - पूजिता । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।७
ॐ विजया मङ्गला भद्रा, धृतिः शान्तिः शिवा क्षमा । सिद्धिस्तुष्टि रमा पुष्टिः, श्रद्धा चैव रतिस्तथा ।।
दीप्ता कान्तिर्यशो - लक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।८
ॐ चक्री जयावती ब्राह्मी, जयन्ती चापराजिता । अजिता मानवी श्वेता, दितिश्चादितिरेव च ।।
माया चैव महा - माया, मोहिनी क्षोभिणी तथा । कमला विमला गौरी, शरण्यम्बुधि - सुन्दरी ।।
दुर्गा क्रियाऽरुन्धती च, घण्ट - कर्णा कपालिनी । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।९

ॐ रौद्री काली च कौमारी, त्रिनेत्रा चापराजिता । सुरूपा बहु-रूपा च, तथैव विग्रहात्मिका ।।
चर्चिका चापरा ज्ञेया, तथैव सुर - पूजिता । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।१०
ॐ वैवस्वती च कौमारी, तथा माहेश्वरी परा । वैष्णवी च महा-लक्ष्मीः, कार्तिकी कौशिकी तथा ।।
शिव-दूती च चामुण्डा, मुण्ड-माला-विभूषिता । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।११
ॐ इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव, निरृतिर्वरुणस्तथा । पवनो धनदेशानौ, ब्रह्माऽनन्तौ दिगीश्वराः ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।१२
ॐ सम्वत्सराश्चायनौ च मासाः पक्षौ दिनानि च । तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।१३
ॐ रविः सोमः कुजः सौम्यो, गुरुः शुक्रः शनैश्चरः । राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ।।१४
ॐ नक्षत्रं करणं योगोऽमृतं सिद्धिस्ततः परम् । दग्धं पापं तथा भद्रा, योगा वाराः क्षणास्तथा ।।
वार-वेला, काल-वेला, दण्ड - राश्यादयस्तथा । अभिषिञ्चन्तु सततं, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।१५
ॐ असिताङ्गो रुरुश्चण्डः, क्रोध उन्मत्त-संज्ञकः । कपाली भीषणाख्यश्च, संहारोऽष्टौ च भैरवाः ।।
अभिषिञ्चन्तु सततं, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।१६
ॐ डाकिनी-पुत्रकाश्चैव, राकिनी-पुत्रकास्तथा । लाकिनी-पुत्रकाश्चान्ये, काकिनी - पुत्रकाः परे ।।
शाकिनी-पुत्रका भूयो, हाकिनी-पुत्रकास्तथा । ततश्च यक्षिणी - पुत्राः, देवी - पुत्रास्ततः परम् ।।
मातॄणां च तथा पुत्रा, ऊर्ध्व-मुख्याः सुताश्च वै । अधोमुख्याः सुताश्चैव, उन्मुख्याश्च सुताः परे ।।
अभिषिञ्चन्तु ते सर्वे, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।१७
ॐ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च, ईश्वरश्च सदा-शिवः । एते त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।१८
ॐ पुरुषः प्रकृतिश्चैव, विकाराश्चैव षोडशः । आत्माऽन्तरात्मा परम-ज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः ।।
आत्मनश्च गुणाश्चैव, स्थूलाः सूक्ष्माश्च येऽपरे । एते त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।१९
ॐ वेदादि-वीजं हुं-वीजं, स्त्री-वीजं मीन-केतनम् । शक्ति-वीजं रमा-वीजं, माया-वीजं सुधाकरम् ।।
चिन्ता-मणि-महा-वीजं, नारसिंहं च शाङ्करम् । मार्तण्ड - भैरवं दौर्गं, वीजं श्रीपुरुषोत्तमम् ।।
गाणपत्यं च वाराहं, काली-वीजं भयापहम् । एतानि चाभिषिञ्चन्तु, मन्त्र - पूतेन वारिणा ।।२०
ॐ गङ्गा गोदावरी रेवा, यमुना च सरस्वती । आत्रेयी भारती चैव, सरयू गण्डकी तथा ।।
कर-तोया चन्द्र-भागा, श्वेत-गङ्गा च कौशिकी । भोग-वती च पाताले, स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।२१
ॐ भैरवो भीम - रूपश्च, शोणो घर्घर एव च । सिन्धुश्चैव ह्रदश्चैव, तथा पाताल-सम्भवाः ।।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।२२
ॐ यानि कानि च तीर्थानि, पुण्यान्यायतनानि च । तानि त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।२३
ॐ जम्बु-द्वीपादयो द्वीपाः, सागराः लवणादयः । अनन्ताद्यास्तथा नागाः, सर्पा ते तक्षकादयः ।।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु, मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।२४
ॐ रतिश्च वल्लभा वह्नेर्वषट् कूर्चमतः परम् । वौषट्-कारं तु फट् - कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।।२५

ऊपर लिखे मन्त्रों का उच्चारण करते समय जहाँ 'अभिषिञ्चन्तु' शब्द आए, उसे कहते हुए आम्र-पल्लव द्वारा घटस्थ जल से शिष्य के शिर पर अभिषेक करना चाहिए ।

'अभिषेक'-कर्म के पूर्ण होने पर गन्धाक्षत पुष्प हाथ में लेकर निम्न आशीर्वचनों का उच्चारण करे—

।। आशीर्वचनाः ।।

नश्यन्तु प्रेत-कूष्माण्डा, राक्षसा दानवाश्च ये। पिशाचा गुह्यका भूता अभिषेकेण ताड़िताः ।।१
अलक्ष्मीः काल-कर्णी च पापानि च महान्ति च। नश्यन्तु चाभिषेकेण, तारा - बीजेन ताड़िताः ।।२
रोगाः शोकाश्च दारिद्र्यं, दौर्बल्यं चित्त-विक्रिया। नश्यन्तु चाभिषेकेण, वाग्-बीजेनैव ताड़िताः ।।३
लोकानुरागस्त्यागश्च, दौर्भाग्यमपि दुर्यशः। नश्यन्तु चाभिषेकेण, मन्मथेनैव ताड़िताः ।।४
तेजो-ह्रासो बल-ह्रासो, बुद्धिह्रासस्तथैव च। नश्यन्तु चाभिषेकेण, शक्ति - बीजेन ताड़िताः ।।५
विषापमृत्यु - रोगश्च, डाकिन्यादि - भयं तथा। घोराभिचाराः क्रूराश्च, ग्रहा नागास्तथा परे ।।६
नश्यन्तु चाभिषेकेण काली-बीजेन ताड़िताः ।।७
नश्यन्तु विपदः सर्वाः, सम्पदः सन्तु सुस्थिराः। अभिषेकेण शाक्तेन, पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।।८

'पूर्णा सन्तु मनोरथाः' कहने के साथ ही हाथ में लिए हुए गन्धाक्षत-पुष्प को शिष्य के शिर पर छोड़कर हृदय से शुभाशीर्वाद देना चाहिए।

।। उपसंहार ।।

ततो देवीं गुरुं चैव, प्रणमेद् बहुधा मुदा। दक्षिणां गुरवे दद्यात्, स्वर्ण - काञ्चन - मानतः ।।१
नाना-वस्त्रैरलङ्कारैर्गन्ध - माल्यादिभिस्तथा। तोषयेत् स्तुति - वाक्यैश्च, प्रणमेत् पुनरेव हि ।।२

अन्त में शिष्य को आनन्द-पूर्वक भगवती एवं गुरुदेव के श्रीचरणों में बारम्बार प्रणाम करना चाहिए और स्वर्ण-मूल्य के अनुसार यथा-शक्ति दक्षिणा गुरु को देनी चाहिए। विविध प्रकार के वस्त्रों, अलङ्कारों, सुगन्धित पदार्थों एवं पुष्प-माला आदि से तथा स्तुति-प्रार्थना-वचनों द्वारा उन्हें प्रसन्न करना चाहिए और पुनः प्रणाम करना चाहिए ।।१-२

कायेन मनसा वाचा, गुरुः कुर्यात् तथाऽऽशिषः। वचनैर्विविधैः शिष्यं, ग्राहयेत् तत्त्वमुत्तमम् ।।३
गुरुश्च भैरवैः सार्द्धं, शक्तिभिर्विहरेन्मुदा। भैरवाः शक्तयश्चापि, कुर्युराशीः सु-यत्नतः ।।४

गुरुदेव मनसा, वाचा और शरीर से शिष्य को आशीर्वाद दें। विविध उपदेशों से शिष्य को उत्तम तत्त्व समझाएँ। तब साधकों और शक्तियों के साथ गुरुदेव आनन्द से विहार करें। साधक एवं शक्तियाँ भी यत्नपूर्वक शिष्य को आशीर्वाद प्रदान करें ।।३-४

तथा त्रि - दिवसं व्याप्य, भोजयेद् भैरवान् बुधः। अष्टमे दिवसे शिष्यः, पुनः कुर्यात् तु सेचनम् ।।५
ताम्र-पात्रोदकैर्देवि ! विद्यां राज्ञां जपन् सुधीः। कुम्भकां च तथा सप्त, सम्पत्ति - हेतवे प्रिये ! ।।६
शक्तिभ्यो भैरवेभ्योऽपि, ततो-वस्त्रादि - भूषणम्। दद्यात् प्रयत्नतः साधु विद्धि देवि ! समापनम् ।।७

इस प्रकार बुद्धिमान् व्यक्ति तीन दिनों तक साधकों को भोजन कराए। आठवें दिन शिष्य पुनः अभिषेक कराए। उस समय हे प्रिये ! सम्पत्ति-लाभ के लिए सात कुम्भ स्थापित कर ताम्र-पात्रस्थ जल द्वारा श्रेष्ठ मन्त्र का जप करे। अन्त में शक्तियों और साधकों को भी प्रयत्नपूर्वक वस्त्राभूषण प्रदान करे। हे देवि ! इस प्रकार अभिषेक-कार्य सम्पन्न होता है ।।५-७

॥ श्रीगुरोर्लक्षणम् ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

श्रुतं रहस्यं देवेश ! चाभिषेचन - कर्मणः । गुरुः को वाऽधिकारी, स्यादत्र तन्मे वद प्रभो ! ॥१

श्री देवी बोलीं—हे देवेश ! अभिषेक-कर्म का रहस्य मैंने सुन लिया । इस कर्म के करने के अधिकारी गुरुदेव अथवा कौन व्यक्ति हैं ? हे प्रभो ! मुझे यह बताइए ॥१

॥ श्रीशिव उवाच ॥

महा-ज्ञानी कौलिकेन्द्रः, शुद्धो गुरु-परायणः । निग्रहानुग्रहे शक्तः, शिष्य-पालन-तत्परः ॥२
पुत्र-दारादिभिर्युक्तः, सज्जनस्तु प्रपूजितः । श्रद्धावानागमे नित्यं, सोऽधिकर्ता न चान्यथा ॥३

श्री शिव ने कहा—महान् ज्ञानी, विशुद्धाचारी एवं गुरु-भक्त श्रेष्ठ कौलिक जो अनुशासन करने में और कृपा करने में समर्थ है तथा जो शिष्यों का पालन करता रहता है, पत्नी-पुत्रादि से मुक्त रहता हुआ अपने कुटुम्बियों से सम्मानित होता हुआ सदा आगम-शास्त्र में श्रद्धा रखता है, वही इस 'अभिषेक-कर्म' के करने का अधिकारी है, अन्य कोई नहीं ॥२-३

अन्धं खञ्जं तथा रुग्णं, स्वल्प-ज्ञान-युतं पुनः । सामान्य-कौलं वरदे ! वर्जयेन्मति-मान् सदा ॥४
उदासीनं विशेषेण, वर्जयेत् सिद्धि-कामुकः । उदासीन-मुखाद दीक्षा, वन्ध्या नारी यथा प्रिये ! ॥५

हे वर-दायिनि ! अन्धे, लूले, रोगी और अल्प-ज्ञानी साधारण कौल साधक को बुद्धिमान् सदा छोड़ दे । सिद्धि की कामना रखनेवाला विशेषकर विरक्त साधक का सहयोग न ले क्योंकि हे प्रिये ! विरक्त के मुख से ली गई दीक्षा उसी प्रकार निष्फल होती है, जिस प्रकार बाँझ स्त्री ॥४-५

अज्ञानाद् यदि वा मोहाद्, उदासीनात् तु पामरः । अभिषिक्तो भवेद् देवि ! विघ्नस्तस्य पदे-पदे ॥६
किं तस्य जप-पूजाभिः, किं ध्यानैः किं च भक्तितः । सर्वं हि विफलं तस्य-नरकं यान्ति चान्तिमे ॥७
कल्प-कोटि-शतैर्देवि ! भुंक्ते स नरकं सदा । ततो हि बहु-जन्मेभ्यो, देवी-मन्त्रमवाप्नुयात् ॥८

हे देवि ! अज्ञान-वश या मोह में पड़कर जो विरक्त साधक से अभिषिक्त होता है, उसके मार्ग में पग-पग पर बाधाएँ आती हैं । उसके जप-पूजन, ध्यान और भक्ति—सभी निष्फल होते हैं और अन्त में वह नरक में जाता है । हे देवि ! करोड़-सैकड़ों कल्पों तक वह सदा नरक-भोग करता है । तब अनेक जन्मों के बाद देवी का मन्त्र प्राप्त करता है ॥६-८

ततो हि विहितं शुद्धं गृहस्थं गुरुमालभेत् । अभिषेचन-कर्माणि, पुनः कुर्यात् प्रयत्नतः ॥९
सफलं हि सदा कर्म, सर्वं तस्य भवेद् ध्रुवम् । विद्याऽपि जननी तुल्या, पालितं सततं प्रिये ! ॥१०

अतः विधि-सम्मत शुद्ध गृहस्थ गुरुदेव को प्राप्त करना चाहिए। फिर प्रयत्न करके अभिषेक-कर्म कराना चाहिए। तब उसके कर्म निश्चय ही सदा सफल होंगे। प्रिये! विद्या अर्थात् कुल-साधना भी मां के समान है। उसका पालन-पोषण निरन्तर करना चाहिए ।।९-१०

यथा पशुं परित्यज्य, कौलिकं गुरुमालभेत् । उदासीनं परित्यज्य, तथाभिषेचनं शतम् ।।११
अभिषिक्तः शिवः साक्षाद्, अभिषिक्तो हि दीक्षितः। स एव ब्राह्मणो धन्यो, देवी-देव-परायणः ।।१२

जिस प्रकार पशु-साधक का त्याग कर कौलिक गुरु को प्राप्त करना चाहिए, उसी प्रकार विरक्त साधक को छोड़कर लोक-हित में तत्पर कौल साधक से अभिषेक कराना ही बिधि-सम्मत है। अभिषिक्त साधक साक्षात् शिव-स्वरूप होता है। दीक्षा-प्राप्त ही अभिषिक्त होता है तथा वही देवी और देव-भक्त ब्राह्मण धन्य कहा जाता है ।।११-१२

तस्यैव सफलं जन्म, धरण्यां शृणु पार्वति! तस्यैव सफलं कर्म, तस्यैव सफलं धनम् ।।१३
तस्यैव सफलो धर्मः, कामश्च सफलो मनुः। दीक्षा हि सफला देवि! क्रिया च सफला तनुः ।।१४

हे पार्वति! सुनो। उसी अभिषिक्त साधक का धर्म सफल होता है। उसी की कामनाएँ पूर्ण होती हैं और उसका मन्त्र फल-दायक होता है। हे देवि! उसी की दीक्षा सफल होती है और तब उसकी क्रिया भी फलवती होती है ।।१३-१४

सर्वं हि सफलं तस्य, गिरिजे! बहु किं वचः। यत्र देशे वसेत् साधुः, सोऽपि वाराणसी-समः ।।१५
तस्य क्रोड़े वसन्तीह, सर्व-तीर्थानि निश्चितं। सत्यं सत्यं महा-माये, पुनः सत्यं मयोदितम् ।।१६

हे गिरिजे! अधिक कहने से क्या, उसके सभी कार्य सफल होते हैं। जिस स्थान में वह निवास करता है, वह वाराणसी के समान तीर्थ बन जाता है। निश्चय ही यहाँ उसकी गोद में सभी तीर्थ रहते हैं। हे महा-माये! यह कथन सर्वथा सत्य है ।।१५-१६

उक्तानि यानि यानीह, सेचनानि च पार्वति! सर्व-तन्त्रेषु तान्यत्र, कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।१७
योग्यं गुरुं तथा शिष्यं, विनैतत् पटलं न हि। जायते देव-देवेशि!, सत्यं सत्यं मयोदितम् ।।१८

हे पार्वति! यहाँ जो-जो अभिषेक-वचन कहे हैं, सभी तन्त्रों में वे सब पूर्णाभिषेक के हैं और उनके बिना सोलह कलाओं में से एक भी कला का ज्ञान नहीं हो पाता। इस पद्धति के बिना योग्य गुरु और वैसे ही शिष्य का होना सम्भव नहीं होता। हे देव-देवेशि! मेरे यह कथन सर्वथा सत्य हैं ।।१७-१८

इदं तु सेचनं देवि! त्रिषु लोकेषु दुर्लभं। गणेशः पात्रमत्रैव, कार्तिकेयोऽपि पार्वति! ।।१९
मम तुल्यो ब्रह्म-तुल्यो, विष्णु-तुल्योऽत्र भाजनं। पञ्च-वक्त्रैश्च शक्तो न, वर्णितुं परमेश्वरि! ।।२०

हे देवि! यह अभिषेक-विधि तीनों लोकों में दुर्लभ है! हे पार्वति! गणेश और कार्तिकेय जैसे व्यक्ति की पात्रता इसमें है। मेरे समान, या ब्रह्मा और विष्णु के समान

व्यक्ति की इसमें योग्यता है। हे परमेश्वरि ! पाँच मुखों से भी इसकी महिमा का वर्णन करना सम्भव नहीं है ॥१९-२०

इति ते कथितं गुप्तं, सेचनं परमं महत् । गोपनीयं गोपनीयं, गोपनीयं प्रयत्नतः ॥२१
यथा रतिर्गोपनीया, तथाभिषेचनं परं । यथा योनिर्गोपनीया तथाऽभिषेचनं परम् ॥ २२
निखाते धनमागत्य, गोपयेत्तु यथा परं । तथैव तु महा-माये, गोपनीयं ममाज्ञया ॥२३

इस प्रकार मैंने अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण गुप्त अभिषेक का वर्णन तुमसे किया है। इसे प्रयत्न-पूर्वक गुप्त रखना चाहिए। जिस प्रकार रति-क्रीडा और योनि गोपनीया हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ अभिषेक को गुप्त रखना चाहिए। जैसे भूगर्भ में धन रख कर उसे अति गुप्त रखा जाता है, उसी प्रकार हे महा - माये ! इसे मेरी आज्ञा से गुप्त रखना चाहिए ॥२१-२३

॥ श्री कामाख्या-तन्त्रे पार्वतीश्वर-संवादे अष्टमः पटलः ॥

नवमः पटलः

मुक्ति-तत्त्वम् (मुक्ति का साधन)

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

मुक्ति-तत्त्वं महादेव, वद मे करुणानिधे ! यस्मिन् षड्-दर्शनानीह, चोपहास्य-गतानि च ॥१

श्री देवी ने कहा—हे दया - सागर महा-देव ! मुझे मुक्ति - तत्त्व बताइए, जिसके समक्ष छः दर्शनों का ज्ञान भी इस संसार में हँसी की बात बन जाता है ॥१

॥ श्रीशिव उवाच ॥

शृणु देवि ! शुभे विज्ञे, यत्पृष्टं तत्त्वमुत्तमं । एतन्मर्मं च त्वं वेत्ति ! अहं वेद्मि तथा हरिः ॥२
मोदकेन यथा लोकः, प्रतारयति बालकान् । लगुड़ेन यथा देवि ! बध्नाति दुर्जनं हि च ॥३
तथानङ्गीकृतो लोके, दर्शनैर्बर्बरो मया । दुर्जने यदि मुक्तिः स्याच्छङ्कयेति शुभानने ! ॥४

श्री शिव ने कहा—हे कल्याणि, विशेष जाननेवाली देवि ! श्रेष्ठ तत्त्व को सुनो। इस रहस्य को तुम जानती हो या मैं और विष्णु ही जानते हैं। जिस प्रकार लोग लड्डू देकर बच्चों को बहलाते हैं या जैसे हे देवि ! दुष्ट को रस्सी से बाँधते हैं, उसी प्रकार दुष्ट को 'मुक्ति' में ही शङ्का होती है, अतः दर्शन-शास्त्रों द्वारा मैं संसार में बर्बर,(अहङ्कारी) को मोह में डाल देता हूँ ॥२-४

षड्-दर्शन-महा-कूपे, पतिताः पशवः प्रिये ! परमार्थं न जानन्ति, दर्वी ! पाक-रसं यथा ॥५
न सारः कदली-वृक्षे, नैरण्डे तु शुभानने ! दर्शनेषु तथा मुक्तिर्नास्ति देवि ! मयोदितम् ॥६

छः दर्शन-रूपी भयङ्कर कुएँ में पशु-भावापन्न लोग गिर जाते हैं और वे परमार्थ को नहीं समझ पाते, जैसे चमचा रसीले पदार्थ को परोसता है, किन्तु वह उसके स्वाद को जड़ होने के कारण नहीं जानता । हे कल्याण-मुखि ! जैसे केले या रेड़ी के पेड़ में कोई तत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार हे देवि ! 'दर्शन' के ज्ञान से मुक्ति नहीं होती ।।५-६

यथा मरीचिकायास्तु, निवर्तन्ते पुनर्मृगाः । दर्शनेभ्यो निवर्तन्ते, तथा मुमुक्षवः पुनः ।।७
श्रीगुरोश्च प्रसादेन, मुक्तिमादौ सदा लभेत् । विचरेत् सर्व-शास्त्रेषु, कौतुकाय ततः सुधीः ।।८

जिस प्रकार मिर्च के पास जाकर पशु पुनः लौट जाते हैं, वैसे ही मोक्ष चाहनेवाले दर्शन-शास्त्र का अध्ययन कर उससे विमुख हो जाते हैं । श्रीगुरु-देव की प्रसन्नता से ही सदैव मुक्ति मिलती है । अतः बुद्धिमान् को उनकी कृपा प्राप्त करने के बाद ही अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए सभी शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए ।।७-८

मुक्ति-तत्त्वं प्रवक्ष्यामि, सादरं शृणु पार्वति ! शरीर-धारणं यस्य, कुर्वन्तीह पुनः पुनः ।।९
आदावनुग्रहो देव्याः, श्रीगुरोस्तदनन्तरं । तदाननात्ततो दीक्षा, भक्तिस्तस्याः प्रजायते ।।१०
ततो हि साधनं शुद्धं, तस्माज् ज्ञानं सुनिर्मलं । ज्ञानान्मोक्षो भवेत् सत्यं, इति शास्त्रस्य निर्णयः ।।११

हे पार्वति ! मैं 'मुक्ति' के तत्त्व को कहूँगा, आदर-सहित सुनो । जो इस संसार में बारम्बार जन्म लेते हैं, उन्हें पहले देवी का—तब श्री गुरु-देव का अनुग्रह पाना चाहिए । तब उनके मुख से दीक्षा ग्रहण करे, जिससे भक्ति उत्पन्न होती है । तदनन्तर पवित्र साधनों से साधना करनी चाहिए । उससे निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है और उस ज्ञान से मोक्ष होता है, यह सत्य है—ऐसा शास्त्र का निर्णय है ।।९-११

मुक्तिश्चतुर्विधा प्रोक्ता, सालोक्यं तु शुभानने ! सारोप्यं सह-योज्यं च, निर्वाणं हि परात्परम् ।।१२
सालोक्यं वसतिर्लोके, सारोप्यं तु स्वरूपतः । सायोज्यं कलया युक्तं, निर्वाणं तु मनोलयम् ।।१३

हे कल्याण-मुखि ! 'मुक्ति' चार प्रकार की कही गई है—१ सालोक्य, २ सारोप्य ३ सह-योज्य और ४ श्रेष्ठ निर्वाण । 'सालोक्य मुक्ति' में इष्ट-देवता के लोक में निवास करने का सौभाग्य मिलता है, 'सारूप्य' में साधक इष्ट - देवता - जैसा ही स्वरूपवान बन जाता है, 'सायुज्य' में वह इष्ट-देव की 'कला' से युक्त हो जाता है और 'निर्वाण मुक्ति' में मन का इष्ट में लय हो जाता है ।।१२-१३

।। श्रीदेव्युवाच ।।

सम्यक् लयो जनस्यैव, निर्वाणं यत्तु कथ्यते । तत् किं वद महा-देव, संशयं लय-सात् कुरु ।।१४

श्री देवी ने कहा—हे महा-देव ! जीव का लय समुचित रूप से जिस 'मुक्ति' द्वारा होता है, जिसे 'निर्वाण'-तत्त्व कहते हैं, वह क्या है, उसे बताइए और सन्देह दूर करिए ।।१४

।। श्री शिव-उवाच ।।

व्यक्तिर्लयात्मिका मुक्तिरसुराणां दया-निधे ! दुर्जनत्वाल्लोपयित्वा, क्रीडयामि सुरानहम् ।।१५
मनोलयात्मिका मुक्तिरिति जानीहि शंकरि ! प्राप्तं मया विष्णुना च, ब्रह्मणा नारदादिभिः ।।१६

श्री शिव ने कहा—हे दया-निधे ! आसुरी व्यक्तित्व का लोप होना ही 'मुक्ति' है। दुर्जनता का नाश करके मैं देवताओं को प्रसन्न करता हूँ। हे शङ्करि ! मनोलयात्मिका 'मुक्ति' को मैंने, विष्णु ने, ब्रह्मा ने और नारद आदि मुनियों ने प्राप्त किया है ।।१५-१६

सालोक्यं केवलं यत्तु, याति सारोप्य-युक् द्वयं । त्रिधा सायोज्यवानेति, निर्वाणी सर्वमेव हि ।।१७
नीलोत्पल-दल-श्यामा, मुक्तिर्द्विदल-वर्तिनी । मुक्तस्यैव सदा स्फीता, स्फुरत्यविरतं प्रिये ! ।।१८

'सालोक्य' भी मुक्ति है, 'सालोक्य' और 'सारूप्य' दोनों मुक्ति हैं और 'सालोक्य', 'सारूप्य' और 'सायुज्य'—ये तीनों ही 'निर्वाण' हैं। दो दलवाले कमल के मध्य में निवास करनेवाली, नील कमल की पंखुड़ियों के समान श्याम वर्णवाली मुक्ति देवी मुक्त जीव के समक्ष प्रकट होकर उसे निरन्तर आनन्दित करती रहती है ।।१७-१८

सनातनी जगद्-वन्द्या, सच्चिदानन्द-रूपिणी । परा च जननी चैव, सर्वाभीष्ट-प्रदायिनी ।।१९
इष्टे निश्चल-सम्बन्धं, निर्वाण-मुक्तिरीदृशी । साधूनां देव-देवेशि ! सर्वेषां विद्धि निश्चितम् ।।२०

वह 'मुक्ति देवी' सनातनी है, विश्व-वन्द्या है, सच्चिदानन्द - रूपिणी पराऽम्बा है और सभी अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करती है। इष्ट-देव के साथ स्थिर सम्बन्ध होना 'निर्वाण - मुक्ति' है। हे देवेश्वरि ! सभी साधु-जनों को यही मुक्ति निश्चित रूप से मिलती है ।।१९-२०

मुक्ति-ज्ञानं कुलज्ञानां, नान्य-ज्ञानं कुलेश्वरि ! तथा च साधनं ज्ञेयं, पञ्च-तत्त्वैश्च मुक्तिदम् ।।२१
अनुग्रहं तु देव्याश्च, कुल-मार्ग-प्रदर्शकः । दीक्षा कुलात्मिका देवि ! श्रीगुरोर्मुख-पंकजात् ।।२२

हे कुलेश्वरि ! कुल-धर्म के ज्ञाता साधक 'मुक्ति' का यह ज्ञान अवश्य रखते हैं, अन्य ज्ञान को वे महत्त्व नहीं देते। साथ ही मुक्ति-दायक पञ्च-तत्त्वों द्वारा साधना को जानते हैं। देवी का अनुग्रह ही कुल-मार्ग का प्रदर्शक है। हे देवि ! कुलात्मिका दीक्षा श्री गुरुदेव के मुख-कमल से मिलती है ।।२१-२२

कुल-द्रव्येषु या भक्तिः, सा मोक्ष-दायिनी मता । ज्ञात्वा चैवं प्रयत्नेन, कुल-ज्ञानं भजेद् बुधः ।।२३
यदि भाग्य-वशाद् देवि ! मन्त्रमेतत्तु लभ्यते । मुक्तेश्च कारणं तस्याः, स्वयं जातं न चान्यथा ।।२४

कुल-द्रव्यों में जो भक्ति होती हैं, वही मोक्ष-दायिनी मानी गई है। प्रयत्नपूर्वक ऐसा जानकर बुद्धिमान् को कुल-धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। भाग्य-वश यदि इस प्रकार की मन्त्र-दीक्षा किसी को मिलती है, तो उसकी मुक्ति का मार्ग स्वयं खुल जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।२३-२४

अश्रुतं मुक्ति-तत्त्वं हि, कथितं ते महेश्वरि ! आत्म-योनिर्यथा देवि ! तथा गोप्यं ममाज्ञया ॥२५

हे महेश्वरि ! अब तक न सुने गए मुक्ति-तत्त्व को मैंने तुमसे कहा । हे देवि ! इसे मेरी आज्ञा से अपनी योनि के समान गुप्त रखना चाहिए ।

॥ श्रीकामाख्या - तन्त्रे पार्वतीश्वर-संवादे नवमः पटलः ॥

दशमः पटलः

कामाख्या-देव्याः स्वरूपम्––(कामाख्या देवी का स्वरूप)

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

कामाख्या या महा - देवी, कथिता सर्व - रूपिणी । सा का वद जगन्नाथ ! कपटं मा कुरु प्रभो ! ॥१

कुर्यास्तु कपटं नाथ ! यदि मे शपथस्त्वयि । रतौ का कामिनी योनिं, सम्यक् न दर्शयेत् पतिम् ॥२

श्री देवी ने कहा—हे जगन्नाथ ! जो महा-देवी कामाख्या सर्व-रूपिणी कही गई हैं, वे कौन हैं ? हे प्रभो ! बताइए, कपट न करें । हे नाथ, यदि बताने में कपट करें, तो आपको मेरी सौगन्ध । रति-काल में पति को किसी कामिनी को योनि का स्पष्ट दर्शन न कराना चाहिए ? ॥१-२

श्रुत्वैतत् गिरिजा-वाक्यं, प्रहस्योवाच शङ्करः ।

॥ श्रीशिव उवाच ॥

शृणु देवि ! मम प्राण-वल्लभे ! कथयामि ते ॥३

या देवी कालिका माता, सर्व-विद्या-स्वरूपिणी । कामाख्या सैव विख्याता, सत्यं देवि ! न चान्यथा ॥४

कामाख्या सैव विख्याता, सत्यं सत्यं न संशयः । सैव ब्रह्मेति जानीहि, यज्ञार्थं दर्शनानि च ॥५

पार्वती के उक्त कथन को सुनकर शङ्कर ने हँसकर कहा—हे मेरी प्राण-प्रिये देवि सुनो, तुम्हें बताता हूँ । जो माता कालिका देवी सर्व-विद्या-स्वरूपिणी हैं, वे ही 'कामाख्या' नाम से प्रसिद्ध हैं । हे देवि ! यह सत्य हैं, अन्य कोई बात नहीं है । वे ही 'कामाख्या'-रूप से विख्यात हैं, यह निस्सन्देह सत्य है । यज्ञ और दर्शन-शास्त्र के लिए वे ही 'ब्रह्म' हैं, ऐसा जानो ॥३-५

विचरन्ति चोत्सुकानि, यथा चन्द्रे हि वामनः । तस्यां हि जायते सर्वं, जगदेतच्चराचरम् ॥६

लीयते पुनरस्यां च, सन्देहं मा कुरु प्रिये ! स्थूला सूक्ष्मा परा देवी, सच्चिदानन्द - रूपिणी ॥७

अमेया विक्रमाख्या सा, करुणा-सागरा माता । मुक्ति - मयी जगद्धात्री, सदाऽऽनन्द - मयी तथा ॥८

जैसे चन्द्रमा को देखकर बौने लोग उसके सम्बन्ध में उत्सुक होकर भटकते फिरते हैं, वैसे ही उस महा-देवी से ही सारा चराचर जगत् उत्पन्न होता है और पुनः उसी में लय होता है । इसमें हे प्रिये ! कोई सन्देह न करो । वे असीमित शक्ति की आधार हैं और अपार दया-मयी मां हैं । वे मुक्ति-दायिनी जगद्धात्री और सदा परमानन्द-मयी हैं ॥६-८

विश्वम्भरी क्रिया-शक्तिस्तथा चैव सनातनी। यथा कर्म - समाप्तौ च, दक्षिणा फल - सिद्धिदा ॥९
तथा मुक्तिरसौ देवि ! सर्वेषां फल - दायिनो। अहो हि दक्षिणा काली, कथ्यते वर - वर्णिनी ॥१०

वे ही विश्व का पालन करनेवाली क्रिया-शक्ति और सनातनी महा-देवी हैं। जिस प्रकार यज्ञादि कर्मों की समाप्ति पर 'दक्षिणा' ही अभीष्ट फल देती है, उसी प्रकार हे देवि ! वे ही मुक्ति और सबके अभीष्ट फल को देनेवाली हैं। इसी से हे सुन्दरि ! वे 'दक्षिणा काली' कही जाती हैं ॥९-१०

कृष्ण-वर्णा सदा काली, आगमस्येति निर्णय। उक्तानि सर्व - तन्त्राणि, तथा नान्येति निर्णयः ॥११
कृत्वा सङ्कल्पमित्यस्य, काम्येषु पाठयेद् बुधः। पठेत् वा पाठयेद् वापि, शृणोति श्रावयेदपि ॥१२
तं तं काममवाप्नोति, श्रीमत् - काली - प्रसादतः। यथा स्पर्श-मणिर्देवि ! तथैतत् तन्त्रमुत्तमम् ॥१३

आगम या तन्त्र-शास्त्र का निर्णय है कि काली सदा कृष्ण-वर्णा हैं। सभी तन्त्रों में ऐसा ही कहा है, अन्य बात नहीं, यही निर्णय है। सङ्कल्प कर जो बुद्धिमान काम्य कर्म के लिए इस तन्त्र का पाठ करता या करवाता है अथवा सुनता या सुनवाता है, वह श्री काली की कृपा से उन-उन कामनाओं को प्राप्त करता है। हे देवि ! स्पर्श-मणि के समान यह तन्त्र उत्तम फल-दायक है ॥११-१३

यथा कल्पतरुर्दाता, तथा ज्ञेयं मनीषिभिः। यथा सर्वाणि रत्नानि, सागरे सन्ति निश्चितम् ॥१४
तथाऽत्र सिद्धयः सर्वाः, भुक्ति - मुक्तिर्वरानने ! सर्व - देवाश्रयो मेरुर्यथा सिद्धिस्तथा पुनः ॥१५

जिस प्रकार 'कल्प-वृक्ष' सभी फलों को प्रदान करता है, वैसा ही इस तन्त्र को मनीषियों को जानना चाहिए। जैसे सभी प्रकार के रत्न समुद्र में रहते हैं, वैसे ही, हे सुमुखि ! सभी सिद्धियाँ—भुक्ति और मुक्ति इससे मिलती हैं। सब देवों का आश्रय जैसे मेरु पर्वत है, वैसे ही यह तन्त्र सभी सिद्धियों का आश्रय है ॥१४-१५

सर्व - विद्या - युतं मन्त्रं, शपथेन वदाम्यहम्। यस्य गेहे स्थितं देवि ! तन्त्रमेतद् भयापहम् ॥१६
रोग-शोक-पातकानां, लेशो नास्ति कदाचन। तत्र दस्यु - भयं नास्ति, ग्रह - राज - भयं न च ॥१७

हे देवि ! मैं सत्य कहता हूँ, विद्याओं से युक्त यह मन्त्र है। जिसके घर में भय को दूर करनेवाला यह तन्त्र विद्यमान है, उसके यहाँ रोग, शोक और पापों का लेश मात्र कभी नहीं रहता। न वहाँ चोरों का भय रहता है, न ग्रहों या राज-दण्ड का भय॥१६-१७

न चोत्पात - भयं तस्य, न च मारी - भयं तथा। न पराजयस्तेषां हि, भयं नैव मयोदितम् ॥१८
भूत-प्रेत-पिशाचानां, दानवानां च राक्षसाम्। न भयं क्वापि सर्वेषां, व्याघ्रादीनां तथैव च ॥१९

उस घर के रहनेवालों को न उत्पातों का भय रहता है, न महा-मारी का। उनकी कभी पराजय नहीं होती, न किसी अन्य प्रकार का भय रहता है। भूत-प्रेत-

पिशाच और दानवों या राक्षसों का, न व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं का भय कहीं उन्हें होता है । यह मेरा वचन है ।।१८-१९

कूष्माण्डानां भयं नैव, यक्षादीनां भयं न च । विनायकानां सर्वेषां, गन्धर्वाणां तथा न च ।।२०
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले, ये ये सन्ति भयानकाः । ये विघ्न - कराश्चैव, न तेषां भयमीश्वरि ! ।।२१

कूष्माण्डों का भय नहीं होता, न यक्ष आदियों का । सभी विनायकों और गन्धर्वों का भी भय नहीं होता । हे ईश्वरि ! स्वर्ग, मृत्यु-लोक और पाताल में जो-जो भयानक और विघ्न-कारक जीव हैं, उन सबका भय भी उन्हें नहीं होता ।।२०-२१

यम - दूताः पलायन्ते, विमुखा भय - विह्वलाः । सत्यं सत्यं महा - देवि ! शपथेन वदाम्यहम् ।।२२
सम्पत्तिरतुला तत्र, तिष्ठति सप्त - पौरुषम् । वाणी तथैव देव्यास्तु, प्रसादेन तु ईरिता ।।२३

हे महा-देवि ! मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ कि यम-दूत भी भय से व्याकुल होकर भाग जाते हैं । असीम सम्पत्ति सात पीढ़ियों तक विद्यमान रहती है । साथ ही देवी कामाख्या की कृपा से सरस्वती भी उस घर में उतने ही समय तक बनी रहती है ।।२२-२३

एतत् ते कथितं स्नेहात्, न प्रकाश्यं कदाचन । गोपनीयं गोपनीयं, गोपनीयं सदा प्रिये ! ।।२४
पशोरग्रे विशेषेण, गोपयेत् तु प्रयत्नतः । भ्रष्टानां साधकानां च, सान्निध्यं न वदेदपि ।।२५

हे प्रिये ! यह सब मैंने तुम्हारे स्नेह-वश बताया है । इसे कभी प्रकट न करें । सदा इसे गुप्त ही रखें । विशेष कर पशु-भाववाले लोगों से इसे प्रयत्न करके छिपा रखना चाहिए । भ्रष्ट साधकों के समक्ष भी इसकी चर्चा न करनी चाहिए ।।२४-२५

न दद्यात् काण - खञ्जेभ्यो, विगतेभ्यस्तथैव च । उदासीन - जनस्यैव, सान्निध्ये न वदेदपि ।।२६
दाम्भिकाय न दातव्यं, नाभक्ताय विशेषतः । मूर्खाय भाव - हीनाय, दरिद्राय ममाज्ञया ।।२७

मेरी आज्ञा है कि इस तन्त्र को काने, लूले, कुलाचार-त्यागी और विरक्त लोगों को न बताए । विशेषकर अहङ्कारी, मूर्ख, भाव-शून्य, दरिद्र और भक्ति - हीन लोगों को इसे न देना चाहिए ।।२६-२७

दद्यात् शान्ताय शुद्धाय, कौलिकाय महेश्वरि ! काली - भक्ताय शैवाय, वैष्णवाय शिवाज्ञया ।।२८
अद्वैत - भाव - युक्ताय, महा - काल प्रजापिने । कुल-स्त्री-वन्द्य-कायाऽपि, शिवाय विनीताय च ।।२९

हे महेश्वरि ! अद्वैत-भाव से युक्त, शान्त, शुद्ध, काली-भक्त, शैव, वैष्णव, महा-काल के उपासक और कुल-स्त्रियों द्वारा वन्दित, विनम्र, शिव-स्वरूप साधक को ही इसे देना चाहिए । यही शिवाज्ञा है ।।२८-२९

।।श्रीकामाख्या-तन्त्रे पार्वतीश्वर-सम्वादे दशमः पटलः।।

एकादशः पटलः

(कामाख्या-पीठ-स्थान-वर्णनम्—कामाख्या-पीठ स्थान का वर्णन)

नेपालं च महा-पीठं, पौगण्ड - वर्द्धमानाथ । पुर - स्थिरं महा - पीठं, चर - स्थिरमतः परम् ।।१
काश्मीरं च तथा पीठं, कान्यकुब्जमथ भवेत् । दारुकेशं महा-पीठमेकाम्रं च तथा शिवे ! ।।२

त्रिस्रोत - पीठमुद्दिष्टं, काम - कोटमतः परम् । कैलासं भृगु-नगं च, केदारं पीठमुत्तमम् ।।३
श्री - पीठं च तथोङ्कारं, जालन्धरमतः परम् । मालवं च कुलाब्जं च, देव - मातृकामेव च ।।४

गोकर्णं च तथा पीठं, मारुतेश्वरमेव च । अष्ट-हासं च वीरजं, राज-गृहमतः परम् ।।५
पीठं कोल - गिरिश्चैव, एला - पुरमतः परम् । कालेश्वरं महा - पीठं, प्रणवं च जयन्तिका ।।६

पीठमुज्जयिनीं चैव, क्षीरिका - पीठमेव च । हस्तिनापूरकं पीठं, पीठमुड्डीशमेव च ।।७
प्रयागं च हि षष्ठीशं, माया - पुरं कुलेश्वरी । मलयं च महा-पीठं, श्रीशैलं च तथा प्रिये ! ।।८

मेरु - गिरिं महेन्द्रं च, वामनं च महेश्वरि ! हिरण्य - पूरकं पीठं, महा - लक्ष्मी - पुरं तथा ।।९
उड्डीयानं महा-पीठं, काशी-पुरमतः परम् । पीठान्येतानि देवेशि ! अनन्त - फल-दायिनी ।।१०

हे देवेशि ! अनन्त फल देनेवाले महा-पीठ ये हैं—१ नेपाल, २ पौगण्ड, ३ वर्द्धमान, ४ पुर-स्थिर, ५ चर-स्थिर, ६ काश्मीर, ७ कान्यकुब्ज, ८ दारुकेश और ९ एकाम्र । इनके बाद अत्यन्त उत्कृष्ट पीठ हैं——१ त्रि-स्रोत (त्रिवेणी-सङ्गम), २ काम - कोट, ३ कैलास-पर्वत, ४ भृगु पर्वत और ५ केदार । अन्य पीठ ये हैं——१ ॐकार, २ जालन्धर, ३ मालव, ४ कुलाब्ज, ५ देव-मातृका, ६ गोकर्ण ७ मारुतेश्वर, ८ अष्ट-हास, ९ वीरज, १० राज-गृह । पुनः महा - पीठ ये हैं——१ कोल - गिरि, २ एलापुर, ३ कालेश्वर प्रणव और ४ जयन्तिका । इनके अतिरिक्त पीठ ये हैं—१ उज्जयिनो, २ क्षीरिका, ३ हस्तिनापुर और ४ उड्डीश । पुनः महा - पीठ ये हैं——१ प्रयाग, २ षष्ठीश, ३ मायापुर, ४ कुलेश्वरी (जनेश्वरी), ५ मलय पर्वत, ६ श्रीशैल पर्वत, ७ मेरु पर्वत, ८ महेन्द्र पर्वत, ९ वामन पर्वत, १० हिरण्यपुर, ११ महा-लक्ष्मी-पुर और १२ उड्डीयान । इन सभी पीठ - स्थानों में साधना अनन्त फल देती है ।।१-१०

यत्रास्ति कालिका-मूर्तिर्निर्जन-स्थान-कानने । विल्व-वनादि-कान्तारे, तत्रास्थायाष्टमी-दिने ।।११
कृष्ण-पक्षे चतुर्दश्यां, शनि - भौम - दिने तथा । महा - निशायां देवेशि ! तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।।१२

हे देवेशि ! यदि किसी निर्जन स्थान में, वन के बीच या किसी बिल्वादि-वन में या किसी दुर्गम घने वन के बीच काली की कोई मूर्ति हो, तो उन सभी स्थानों में बैठकर शनिवार या मङ्गलवार-युक्त कृष्णाष्टमी या कृष्णा चतुर्दशी तिथि में महा-निशा-काल में कालिका देवी की साधना करने से भी अति उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है ।।११-१२

अन्यान्यपि च पीठानि, तत्र सन्ति न संशयः । देव - दानव-गन्धर्वाः, किन्नराः प्रमथादयः ।।१३
यक्षाद्या नायिका सर्वा, किन्नर्यश्च देवाङ्गनाः । अर्चयन्त्यत्र देवेशीं, पञ्च-तत्त्वादिभिः पराम् ।।१४

अन्य भी पीठ संसार में हैं, इसमें सन्देह नहीं । वहाँ देव-दानव - गन्धर्व, किन्नर, प्रमथ आदि, यक्ष आदि, सभी नायिकाएँ, किन्नरियाँ और देव-स्त्रियाँ पञ्च - तत्त्वों आदि से परा देवी की पूजा करती हैं ।।१३-१४

वाराणस्यां सदा पूज्या, शीघ्रं तु फल-दायिनी । ततस्तु द्विगुणा प्रोक्ता, पुरुषोत्तम - सन्निधौ ।।१५
ततो हि द्विगुणा प्रोक्ता, द्वारावत्यां विशेषतः । नास्ति क्षेत्रेषु तीर्थेषु, पूजा द्वारावती-समा ।।१६

वाराणसी में देवी कामाख्या सदा पूजनीया हैं, शीघ्र ही फल देती हैं। उससे दूना फल पुरुषोत्तम तीर्थ में मिलता है । विशेषकर द्वारावती में उससे भी दूना फल मिलता है । द्वारावती के समान फल-दायिनी पूजा अन्य किसी क्षेत्र, तीर्थ में नहीं होती ।।१५-१६

विन्ध्येऽपि षड्-गुणा प्रोक्ता, गङ्गायामपि तत्-समा । आर्यावर्त्ते मध्य-देशे, ब्रह्मावर्त्ते तथैव च ।।१७
विन्ध्य-वत् फलदा प्रोक्ता, प्रयागे पुष्करे तथा । एतच्च द्विगुणोक्तं प्रोक्तं, करतोया-नदी-जले ।।१८

विन्ध्याचल और गङ्गा किनारे पूजा करने से छः गुना फल होता है और आर्यावर्त, मध्य-देश एवं ब्रह्मावर्त में भी वैसा ही फल मिलता है । प्रयाग और पुष्कर विन्ध्याचल के समान ही फल-प्रद हैं। करतोया नदी के जल - मध्य में उसका दूना फल मिलता है ।।१७-१८

ततश्चतुर्गुणं प्रोक्तं, नन्दी-कुण्डे च भैरवे । एतच्चतुर्गुणं प्रोक्तं वल्मीकेश्वर - सन्निधौ ।।१९
यत्र सिद्धेश्वरी योनौ, ततोऽपि द्विगुणा स्मृता । ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्य - नद - पयसि ।।२०

नदी-कुण्ड और भैरव-कुण्ड में पूजा का चौगुना फल होता है । उससे चौगुना फल वल्मीकेश्वर के निकट मिलता है । जहाँ सिद्धेश्वरी योनि विद्यमान है, वहाँ दुगुना फल होता है । उससे चोगुना फल लोहित नद के जल में बताया गया है ।।१९-२०

तत्-समा काम-रूपे तु, सर्वत्रैव जले स्थले। देवी-पूजा तथा शस्ता, काम-रूपे सुरालये ॥२१
देवी-क्षेत्रे काम-रूपं, विद्यते नहि तत्-समम् । सर्वत्र विद्यते देवी, काम-रूपे गृहे गृहे ॥२२

काम-रूप में जल और स्थल सभी स्थानों में की गई पूजा का फल वैसा ही होता है । काम-रूप और देवालय में महा-शक्ति की पूजा प्रशस्त है । देवी - क्षेत्र में काम - रूप विद्यमान रहता है, उसके समान कुछ भी नहीं है। इस प्रकार देवी काम-रूप में घर-घर में विराजमाना है ॥२१-२२

ततश्चतुर्गुणं प्रोक्तं, कामाख्या-योनि-मण्डलम् । कामाख्यायां महा-माया, सदा तिष्ठति निश्चितम् ॥२३

कामाख्या-योनि-मण्डल चौगुना फल-दायक है । कामाख्या में महा - माया सदैव निश्चित रूप से विद्यमान रहती है ॥२३

एषु स्थानेषु देवेशि ! यदि दैवात् गतिर्भवेत् । जप-पूजादिकं कृत्वा, नत्वा गच्छेत् यथा-सुखम् ॥२४

हे देवेशि ! उक्त स्थान में यदि दैवयोग से पहुँच जाय, तो जप-पूजा आदि करके देवी को प्रणाम कर सहर्ष अभीष्ट स्थान को जाना चाहिए ॥२४

स्त्री-समीपे कृता पूजा, जपश्चैव वरानने ! काम-रूपाच्छत-गुणं, फलं हि समुदीरितम् ॥२५
अतएव महेशानि ! संहतिर्योषितां प्रिये ! गृहीत्वा रक्त-वसनां, दुष्टां तु वर्जेत् भक्ति-मान् ॥२६

हे वरानने ! स्त्री के पास की गई पूजा और जप का फल 'काम-रूप' के प्रभाव से सौ गुना अधिक होता है । अतः हे महेशानि ! रक्त-वस्त्रा स्त्रियों का सहयोग लेना चाहिए । दुष्ट-स्वभाववाली स्त्रियों से भक्त साधकों को दूर रहना चाहिए ॥ २५-२६

एक-नित्यादि-पीठे वा, श्मशाने वर-वर्णिनि ! स्त्री-रूपे हि सदा सन्ति, पीठेऽन्यत्रापि[1] च प्रिये! ॥२७
स्त्र्यङ्गेषु च[2] महा-माया, जागर्ति सततं शिवे ! देह - पीठं महा-पीठं, प्रत्यक्षं दिव्य - रूपिणी ॥२८

हे प्रिये सुन्दरि ! एक-नित्या आदि पीठ में या श्मशान में या अन्य पीठों में भी स्त्री-रूप में देवी सदैव विराजमान रहती हैं । हे शिवे ! स्त्री के अङ्गों में महा-माया निरन्तर जाग्रत् रहती हैं । देह-पीठ ही महा-पीठ है, वहाँ देवी-रूप प्रत्यक्ष दिखाई देता है ॥२७-२८

भ्रान्त्याऽन्यत्र भ्रमन्ति ये, देशे देशे च मानवाः । पशवस्ते··· ··· ··· यथानघे! ।।२६

भ्रान्ति-वश जो मनुष्य देश-देश में भटकते फिरते हैं, हे पवित्रे ! वे पशु के समान ही हैं ।।२६

काली-मूर्तिर्यत्र निर्जने, विपिने कान्तारे वापि । कृष्णाष्टमी-निशा-भागे, कालीं सम्पूज्य पञ्चमे ।।३०
गुटिका-खड्ग-सिद्धि च, खेचरी-सिद्धिमेव च । यक्ष-गन्धर्व-नागानां, नायिकानां महेश्वरि ! ।।३१
भूत-वेताल-देवानां, कन्यानां सिद्धिमेव च । जायते परमेशानि ! किं पुनः कथयामि ते !।३२
पञ्च-तत्त्व-विहीनानां, सर्वं निष्फलतां व्रजेत् ।। ३३

निर्जन स्थान में, वन या घने जङ्गल में, जहाँ भी काली की मूर्ति स्थापित हो वहाँ कृष्णाष्टमी के रात्रि-काल में पञ्च तत्त्वों से काली की पूजा करे, तो गुटिका-सिद्धि, खेचरी-सिद्धि, यक्ष-गन्धर्व-नाग-भूत-वेताल-देवों की नायिकाओं और कन्याओं की सिद्धि प्राप्त होती है । हे परमेश्वरि ! इससे अधिक क्या कहूँ । हाँ, पञ्च-तत्त्वों से विहीन लोगों के सभी कर्म निष्फल होते हैं ।।३०-३३

पाठ-भेद—१ युक्ता अन्यानपि, युक्तान्यपि, २ स्त्रियाङ्गैव

।। कामाख्या-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे एकादशः पटलः ।।

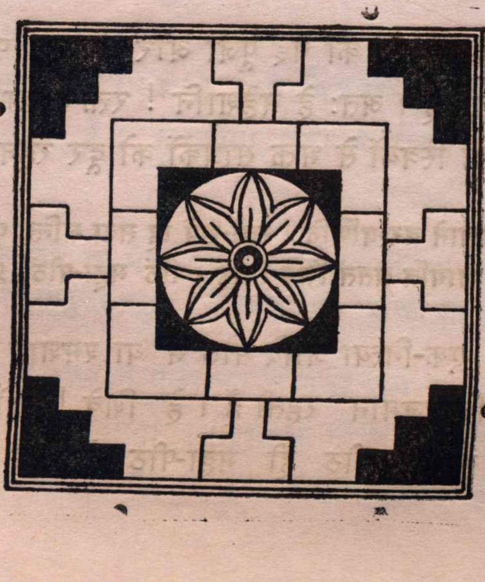

द्वादशः पटलः

[मन्त्राणां कुल्लुका-वर्णनम् : मन्त्रों की कुल्लुकाओं का वर्णन]

॥ श्रीशङ्कर उवाच ॥

इदानीं शृणु देवेशि ! विद्यां परम-दुर्लभाम् । अज्ञात्वा कुल्लुकां देवि ! महा-मन्त्रं जपेत् तु यः ॥१
चत्वारि तस्य नश्यन्ति, आयुर्विद्या-यशो-धनम् । तारायाः कुल्लुका देवि ! महा-नील-सरस्वती ॥२

श्रीशङ्कर ने कहा—हे देवेशि ! अब अति दुर्लभ विद्या को सुनो । हे देवि ! 'कुल्लुका' को जाने बिना जो महा-मन्त्र को जपता है, उसको चार बातें—१ आयु, २ विद्या, ३ कीर्ति और ४ सम्पत्ति—नष्ट हो जाती हैं । हे देवि ! तारा की 'कुल्लुका' है महा-नील-सरस्वती अर्थात् 'ह्रीं स्त्रीं हूं' ॥१-२

पञ्चाक्षरी कालिकायाः, कुल्लुका परि-कीर्तिता । काली-कूर्च-वधू-माया-फट् तु परमेश्वरि ! ॥३
छिन्नायास्तु महेशानि ! कुल्लुकाऽष्टाक्षरी प्रिये ! वज्र-वैरोचनीये च, अन्ते वर्म प्रकीर्तयेत् ॥४

हे परमेश्वरि ! कालिका की 'कुल्लुका' पाँच अक्षरों की कही गई है—१ काली (क्रीं) २ कूर्च (हूं), ३ वधू (स्त्रीं), ४ माया (ह्रीं) और ५ फट् अर्थात् 'क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्'। हे प्रिये, महेशानि ! छिन्न-मस्ता की 'कुल्लुका' आठ अक्षरों की है—'**वज्र-वैरोचनीये हुं**' (वर्म) ॥३-४

प्रासाद-वीज-शस्तौ मञ्जु-घोषे षडक्षरः । भुवनेश्या तु ह्रीं वीजं……च्चाष्ट……का ॥५
नमो नारायणायेति, प्रणवाद्या च कुल्लुका । ब्रह्म-वीजं तु भैरव्याः कुल्लुका परि-कीर्तिता ॥६

मञ्जुघोष के षडक्षर मन्त्र—'**अरवचलधीं**' की 'कुल्लुका' है प्रासाद-वीज अर्थात् '**हौं**' । भुवनेश्वरी की 'कुल्लुका' है '**ह्रीं**' और '**ॐ नमो नारायणाय**'…मन्त्र[1] की अष्टाक्षरी 'कुल्लुका' है । ब्रह्म-वीज अर्थात् 'ॐ' भैरवी की 'कुल्लुका' है ॥५-६

सरस्वत्या वाग्-भवं च, अन्नदाया अनङ्गकम् । अपराणां च देवानां, मन्त्रमेतत् प्रकीर्तितम् ॥७

सरस्वती की 'कुल्लुका' है वाग्-भव अर्थात् 'ऐं' और अन्नदा या अन्नपूर्णा की है अनङ्ग अर्थात् '**क्लीं**' । अन्य देव-देवियों के मन्त्रों की 'कुल्लुका' उन-उनके अपने मन्त्र ही 'कुल्लुका'-रूप में जपनीय हैं ।

इत्येत् कथितं देवि ! संक्षेपात् कुल्लुका-विधिः । जपस्य आदावन्ते च, दशधा वा त्रिधा वापि ॥८
कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जप्य, पुनः विद्यां ततो जपेत् । तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रो, अन्यथा निष्फलं भवेत् ॥९

हे देवि ! संक्षेप से यह कुल्लुका-विधि कही गई । मूल-मन्त्र के जप के पहले और अन्त में दस या तीन बार 'कुल्लुका' का जप करना चाहिए । 'कुल्लुका' का जप सिर के शीर्ष भाग में करने के बाद ही मूल-मन्त्र का जप करना चाहिए । तभी मन्त्र सिद्ध होता है, अन्यथा उसका कोई फल नहीं होता ॥८-९

सुप्त-प्रबोध-कालं तु, मन्त्राणामभिधीयते । स्वाप-काले वाम-वायुः, प्रबोधो दक्षिणा-वहः ।।१०
आग्नेयस्य मनो सौम्यः, नासौ एतद् ।वपर्ययः । एतत् पुण्या भवेद् विद्या, महा-शङ्खेन गीयते ।।११

मन्त्रों का 'निद्रा' - काल और 'जाग्रति'-काल जानना चाहिए । बाईं नाक से साँस चले, तो 'निद्रा-काल' और दाईं नाक से चले, तो 'जाग्रति'-काल समझना चाहिए। जाग्रति-काल में जप करने से उग्र मन्त्र भी सौम्य हो जाता है, इसमें कभी व्यतिक्रम नहीं होता । महा-शङ्ख की माला में जप करने से सभी मन्त्र पवित्र फल देते हैं ।।१०-११

आदौ काम-कला-वीजं, स्व-मन्त्रं तु ततो जपेत् । प्रायश्चित्तमिदं देवि ! कृत्वा मन्त्रं जपेद् यदि ।।१२
किं पुनः दक्षिणा वायुस्तस्य निद्रातुरो वा किम् । ध्यात्वा काम-कलां देहे, विद्या-जपं समाचरेत् ।।१३

पहले काम-कला-वीज (इ) का जप करे । फिर अपने मूल-मन्त्र का जप करे । हे देवि ! इस प्रायश्चित्त को करके यदि मन्त्र जपा जाता है, तो बाएँ या दाएँ श्वास के चलने का विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। अतः अपने शरीर में काम-कला का ध्यान कर सीधे मूल-मन्त्र का जप करना चाहिए ।।१२-१३

ऊर्ध्व-विन्द्वात्मकं वक्त्रं अधोविन्दुस्तु चरणौ । ………काम-पूरं, स्वमाद्यानं विचिन्तयेत् ।।१४
एतत् काम-कला-ध्यानं गुप्ताद् गुप्त-तमं महत् ।

काम-कला के ऊर्ध्व-विन्दु को उसका मुख और अधो विन्दु को उसके चरण समझना चाहिए ।…अपने को काम-कला-स्वरूप ध्यान करना चाहिए । काम-कला का यह ध्यान गोपनीय से भी अत्यधिक गोपनीय है।

१ '…' यहाँ वह मन्त्र स्पष्ट नहीं है, जिसकी 'कुल्लुका' बताई गई है ।

।। कामाख्या-तन्त्रे श्रीशिव-पार्वती-सम्वादे द्वादशः पटलः ।।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति समर्पित अनूठी मासिक पत्रिका

सम्पादक की वाणी

अप्रैल ९० अङ्क के सम्बन्ध में पाठकों की कुछ सम्मतियाँ

* श्री भरतलाल गुप्त, वाराणसी (उ. प्र.)/२०.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' का नया कलेवर देखकर सचमुच मन झूम उठा। कृपया हार्दिक बधाई स्वीकार करें। वास्तव में बहुत आकर्षक कवर बना है। इसके तीन चित्र इसे वस्तुतः 'सरस्वती' का रूप प्रदान कर देते हैं।...अप्रैल, ९० अङ्क की सभी सामग्री—लेख, कविता, संस्मरण यहाँ तक कि पत्र भी अद्‌भुत रूप से स्तरीय हैं। पत्रिका में छपे पत्र मुझे अन्य पत्रिकाओं की कहानियों से भी अधिक अच्छे लगे क्योंकि इनसे समग्र देश में चल रही बौद्धिकता का सही पता चल जाता है, और यही पत्रिका का गौरव भी है कि उसे किस प्रकार के लोग पढ़ते हैं।... श्री कल्लप्पाचार्य जी का परिचय अत्यन्त हृदय-स्पर्शी रहा। इसे छाप कर आपने दक्षिणवालों के प्रति उत्तरवालों की तमाम भ्रान्तियों को दूर कर दिया कि देश में राजनीति भले एक न हो, राष्ट्र-भाषा हिन्दी एक ही है।...."

प्रो० आर. के. मिश्र, हिन्दू वि. वि., वाराणसी (उ. प्र.)/२०.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी', अप्रैल, ९० अङ्क में आपने बहुत दुर्लभ सामग्री प्रस्तुत की है। प्रयास सराहनीय है।...मेरी शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।...."

* पं० अशोक शर्मा 'दीनबन्धु', टीकमगढ़ (म. प्र.)/२०.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' के अङ्क पढ़कर हृदय गद्‌गद हो गया।...श्रीभरतलाल गुप्त की रचना 'कैसा लगता है' और श्री महेशचन्द्र 'सरल' का आत्म-कथ्य 'कलम का सिपाही' अधिक रोचक और प्रेरक लगे। वैसे 'सम्पादक की वाणी' के लिए तो जितना कहा जाए, कम ही होगा। इसके तो शब्द-शब्द में साहित्यिक रस-सागर उमड़ता प्रतीत होता है।...."

* पं. विद्याप्रसाद पाण्डेय, वाराणसी (उ. प्र.)/२३.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' के सुयश एवं विस्तारार्थ भगवान् से प्रार्थना है।...."

* पं० देवेन्द्रनाथ प्रशान्त, पाण्डु (असम)/२४.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' ने आपके सुयोग्य सम्पादन में अपना स्थान बना लिया है—मौलिक सामग्री प्रशंसनीय है।...."

* पं देवीदीन त्रिपाठी, भारतीय लघु समाचार पत्र सम्पादक महासंघ, कानपुर (उ. प्र.)/२४.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' अप्रैल,९० देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।...प्रकाशित सामग्री वास्तव में पठनीय है। उस पर क्रियात्मक प्रतिक्रिया की आवश्यकता है।....'दूर-दर्शन और राष्ट्र-भाषा', 'उ. प्र. हिन्दी संस्थान के सूत्रधारों से' शीर्षक वास्तविकता के निदर्शक हैं।...."

* श्री कल्लप्पाचार्य, हिन्दी पण्डित, गोगी (कर्नाटक)/२८.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' अप्रैल, ९ का अङ्क सुन्दर आवरण से सुशोभित है।....वीणा-पाणि सरस्वती तथा आचार्य द्विवेदी और पं देवीदत्त शुक्ल जी के चित्र 'सम्पादक की वाणी' की उदात्त परम्परा के द्योतक हैं। मेरा मत है कि 'सरस्वती' ने हिन्दी पत्रकारिता के जो प्रतिमान स्थापित किए थे, 'सम्पादक की वाणी' उन्हीं प्रतिमानों की रक्षा करती हुई द्विवेदी और पं० देवीदत्त शुक्ल जी के स्वप्नों को साकार कर रही है।.... 'सम्पादक की वाणी' चिरायु हो।...."

* पं० गणेशशङ्कर वाजपेयी, बकसर-उन्नाव (उ० प्र०)/२९-४-९०

"....अप्रैल, ९० की 'सम्पादक की वाणी' प्राप्त हुई। मन गद्‌गद हो गया। आप तो दोनों कुलों के प्रकाश-पुञ्ज बन गए हैं। द्विवेदी जी एवं शुक्ल जी के तो होना ही चाहिए। यह रङ्ग-बिरङ्गी पत्रिका--उसमें चण्डिका जी का विग्रह पाकर हृदय प्रफुल्लित हो उठा।...."

* श्री रवीन्द्र गिरि, ताम्बरम्, मद्रास (तमिलनाडु)/३०.४.९०

"....'सम्पादक की वाणी' अप्रैल अङ्क मुझे विशेष रूप से अच्छा लगा। हिन्दी-भाषा को प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के लिए पूज्य शुक्ल जी के योग-दान को जानकर उनके प्रति सिर श्रद्धा से झुक जाता है। ऐसे महान् व्यक्ति बिरले ही होते हैं, जिनमें निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की भावना होती है। पूज्य शुक्ल जी को हिन्दी की सेवा करने में जिन-जिन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा, उनका सामना अदम्य साहस एवं उत्साहवाला व्यक्ति ही कर सकता है। समस्त भारत-वर्ष को इन सपूत पर गर्व है और जहाँ-जहाँ हिन्दी जायगी, इनकी कर्मठता एवं लगन की कथा अवश्य सुनाएगी, जो दूसरों के लिए प्रेरणा-स्रोत होगी।...."

कृपया आप भी 'सम्पादक की वाणी' के सदस्य/मान्य सहायक बनिए।

- निर्धन बन्धुओं के लिए मात्र डाक-व्ययादि-शुल्क १० रु० वार्षिक
- समर्थ साहित्य-प्रेमियों के लिए वार्षिक शुल्क ३६ रु० और—
- हिन्दी-हितैषी धनी - मानी महानुभावों के लिए वार्षिक अनुदान-शुल्क→
  - प्रतिपालक ५०० रु०/सम्वर्द्धक ३०० रु०/सम्पोषक २०० रु०/ संरक्षक १०० रु०/सहायक ५० रु०/सहयोगी ३६ रु०।

स्वेच्छा से अभीष्ट वार्षिक शुल्क कृपया म. आ. या बैंक-ड्राफ्ट द्वारा 'श्रीरमादत्त शुक्ल' के नाम 'चण्डी-कार्यालय, प्रयाग (उ. प्र.)-६' के पते से भेजें। दूरभाष : ५१४८३

सप्तशती-तत्त्वं

'सप्तशती' के ऐतिहासिक आख्यान की दार्शनिक व्याख्या । मूल्य १०) रु.

मन्त्रात्मक सप्तशती

इसमें सप्तशती के प्रत्येक मन्त्र के अनुष्ठान की अभूत-पूर्व अनुभूत विधि दी गई है, जो गुप्तावतार बाबाश्री हिमालय के गुह्यप्रदेश से १६२४ के अनेक वर्षों पूर्व ले आये थे । सजिल्द मूल्य ८५) रु.

सार्थ चण्डी-श्रीदुर्गासप्तशती

'गुप्तवती', 'शान्तनवी' आदि प्रसिद्ध संस्कृत-टीकाओं के आधार पर हिन्दी में पहली बार दुर्गा सप्तशती के प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या । मूल्य ५०) रु.

विशुद्ध चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)

अर्गला, कीलक, कवच और तीनों रहस्य—सप्तशती के ये सभी 'षडङ्ग' विनियोग व न्यास-युक्त और 'विस्तृत-पूजा-पद्धति' तथा प्रचलित सप्तशती की पुस्तकों की गम्भीर त्रुटियों को दूर कर 'विशुद्ध मूल-पाठ' पहलेपहल इस पुस्तक में प्रकाशित हुआ है । भगवती दुर्गा का ध्यान-सम्मत सुन्दर रङ्गीन चित्र दिया गया है । नित्य-पाठ के लिए अनूठा संस्करण । मूल्य ६-००

रजि० सं० ३२९९१/५७ फरवरी-मार्च, १९९० रजि० सं० ए० डी० ९६

श्रीमद्-देवी-भागवत

का

हिन्दी-पद्यानुवाद

(दो भागों में, मूल्य ३५०-०० रु०। 'चण्डी' सदस्यों के लिए रियायती मूल्य २८०-०० रु०)

'श्रीमद्-देवी-भागवत' १८ पुराणों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। 'महा-शक्ति' की उपासना और 'महा-शक्ति' के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित आख्यानों का जितना विशद वर्णन इसमें मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

जाग्रत 'महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल' के प्रख्यात तन्त्र-साधक स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती के शिष्य और सुपुत्र श्रीयमुनाप्रसाद जी ब्रह्मचारी ने अनेक वर्षों की साधना-स्वरूप 'श्रीमद्-देवी-भागवत' का हिन्दी-पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है।

आपका अनुवाद सरस और सहज है तथा इसके द्वारा 'श्रीमद्-देवी-भागवत' के बहुत से कठिन अंशों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

इस हिन्दी-पद्यानुवाद से देवी के उपासकों को विशेष ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

भागवतधर्म का प्राचीन इतिहास

भागवत धर्म
(सनातन हिन्दू धर्म)
पर
विस्तृत रूप में प्रकाश डालनेवाली
शोध-पूर्ण उपयोगी पुस्तक
मूल बँगला-लेखक
ब्रह्मीभूत स्वामी विद्यारण्य जी
अनुवादक
श्री रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए डाक-व्यय सहित मूल्य १०-०० रु०

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, पद्म वाणी प्रेस, इलाहाबाद ६